YOGA NOTES

Yoga Notes For YCB, Net-Jrf, Phd. Entrance
& All Other Yoga Competitive Exams

Author:
Shubham Barwala

" ओउम् "

प्राकृतिक चिकित्सा

- ☞ प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ एवं परिभाषा।
- ☞ प्राकृतिक चिकित्सा के मूलभूत सिद्धांत
- ☞ पंच महाभूत परिचय।
- ☞ जल तत्व, पृथ्वी तत्व की परिभाषा।
- ☞ स्वास्थ्य।
- ☞ रोग की अवधारणा।
- ☞ विजातीय द्रव्य सिद्धांत।
- ☞ शारीरिक, मानसिक एवं अध्यात्मिक स्वास्थ्य।
- ☞ निदान एवं निदान की विधियाँ।
- ☞ जल चिकित्सा, जल के प्रकार एवं प्रयोग।
- ☞ अग्नि तत्व चिकित्सा की प्रमुख विधियाँ।
- ☞ उपवास के सिद्धांत, प्रकार एवं महत्व।
- ☞ पृथ्वी तत्व द्वारा विभिन्न रोगों की चिकित्सा।
- ☞ पंच प्राण, प्राण शक्ति, प्रतिरोधक क्षमता।
- ☞ अभ्यंग चिकित्सा।
- ☞ एनिमा।

☞ निर्माणकर्त्ता :- शुभम बरवाला

:- 94666-13072

facebook.com/vedamritaofficial

info@vedamrita.com

Vedamrita Official

www.vedamrita.com

प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ एवं परिभाषा

प्रकृति (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) द्वारा की गई रोगों की चिकित्सा प्राकृतिक चिकित्सा कहलाती है। हमारा शरीर भी पंचतत्वों से बना है। प्राकृतिक चिकित्सा का यह अटल सिद्धांत है कि मानव शरीर में स्थित एक ही विजातीय द्रव्य अनेकों रोगों के रूप में तथा विभिन्न नामों से प्रकट होता है। शरीर में रोग केवल एक है जो हमारे शरीर में मल के रूप में जमा है और वही मूलतः रोग की जड़ है, इसकी उपज हमारे अप्राकृतिक जीवन जीने से होती है और प्राकृतिक चिकित्सा में उपचार है कि इन विजातीय तत्वों को शरीर से बाहर कर दिया जाए। वास्तव में प्राकृतिक चिकित्सा एक चिकित्सा पद्धति नहीं अपितु जीवन जीने की कला है जो हमे आहार, निद्रा, सूर्य का प्रकाश, पेयजल, विशुद्ध हवा, सकारात्मकता एवं योग विज्ञान का समुचित ज्ञान कराती है। प्राकृतिक चिकित्सा से रोग ठीक किये जाते है पर यदि प्रकृति के अनुसार जीवन जिया जाए तो रोग होगें ही नहीं।

प्राकृतिक चिकित्सा व्यक्ति को उसके शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक तलों पर प्रकृति के रचनात्मक सिद्धांतों के अनुकूल निर्मित करने की एक पद्धति है।

प्राकृतिक चिकित्सा की परिभाषा :–

1) **कुने लुईस 1957 :–** ''प्राकृतिक प्रणाली जिसका कि चिकित्सा के रूप में उपयोग करते है तथा जो दूसरी पद्धतियों से गुण में बहुत अच्छी है, बिना औषधियां आपरेशन के उपचार की आधार शिक्षा है''।

2) **महात्मा गाँधी :–** ''प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति से योग पर जाने के साथ ही रोगी के लिए ऐसी जीवन पद्धति का आरम्भ होता है जिसमें पुनः रोग के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं रहती।''

3) **पं. श्री राम शर्मा आचार्य :–** ''प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ है प्राकृतिक पदार्थो विशेषतः प्रकृति के पांच मूल तत्वों द्वारा स्वास्थ्य रक्षा और रोग निवारक उपाय करना।

4) **विलियम ओसलर :–** प्रकृति जिसे आरोग्य नहीं करती उसे कोई भी आरोग्य नहीं कर सकता है।

5) **हिपोक्रेटस :–** ''प्रकृति ही रोग मिटाती है, डॉक्टर नहीं।

अतः कहा जा सकता है कि प्राकृतिक चिकित्सा रोगों को दबाती नहीं वरन् उसकी जड़ खत्म करने में सक्षम है।

आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा का जन्म एवं विकास :–

ईसा के जन्म के 400 वर्ष पूर्व ग्रीस के हिपोक्रेटीज प्राकृतिक चिकित्सा के जनक कहे जाते है। उनकी धारणा थी कि प्रकृति में रोग निवारण शक्ति है तथा नये–2 रोग स्वयं ही शरीर में एक प्रकृति तरीके से उभार लाकर शरीर के भागों में से एक अधिक के द्वारा विकारों के बाहर कर देते है।

यूनान के स्यार्टन नामक जाति में शीतल जल से स्नान करने का कानून बना था वहाँ बड़े–2 स्नानगार में शीतल और उष्ण वायु स्नान की व्यवस्था की।

फादरनीप ने प्राकृतिक चिकित्सा का उपयोग बड़े उत्साह से किया और जड़ी बुटी का जल के प्रयोग सम्बन्धी बहुमूल्य अविष्कार किये।

रेजेज ने ज्वर के ताप को कम करने के लिए बर्फीले जल की सलाह दी।

एवी सेना ने कब्ज निवारण हेतु शीतल जल का स्नान तथा मिट्टी को लाभकारी बताया।

पाश्चात्य देशों में प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास :–

डॉक्टर फ्लायर इग्लैण्ड़ के लिचफील्ड़ निवासी थे। लियफील्ड़ के एक स्त्रोत के पानी में कुछ किसानों को नहाते देखकर स्वास्थ्य लाभ प्राप्त देखा और इस सम्बन्ध में उन्होंने खोज की और जल चिकित्सा आरम्भ की। सन् 1667 में सर जान फलोयर ''**हिस्ट्री ऑफ कोल्ड बाचिंग**'' नामक पुस्तक लिखी जिसमें इन्होनें शीतल जल के महल पर विस्तार से प्रकाश डाला।

आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा के प्रणेता विनसेन्ज प्रेविनज माने जाते है। जो की फादर ऑफ वाटर थरैपी माने जाते है। इनका जन्म जर्मनी में 1752 में हुआ। उन्होंने एक लंगड़ी हिरनी को बुरी तरह घायल देखा वह हिरनी झरने के नीचे आधे घण्टे पानी में खड़े होने के बाद वापिस चली गयी। दूसरे दिन भी वह उसी समय आई और इस बार आधे घण्टे से अधिक रहने के बाद पुनः वापिस चली गई। विनसेन्ज प्रेविनज ने देखा कि तीन सप्ताह तक हिरनी इसी प्रकार आती रही और उसकी चोट ठीक हो गई। इसके बाद उन्होंने अपनी टूटी पसलियों की चिकित्सा भी जल द्वारा की व उनकी पसलियाँ ठीक होने पर उनका जल चिकित्सा पर गहन विश्वास हो गया। उन्होंने 1829 में जल चिकित्सा प्रणाली की स्थापना की।

महात्मा गाँधी : महात्मा गाँधी भी प्राकृतिक चिकित्सा के अनुयायी थे। इन्होंने इस चिकित्सा पद्धति का बहुत गहराई से अध्ययन किया और उसे सर्वप्रथम अपने ऊपर फिर अपने परिवारजनों और आश्रम वासियों पर प्रयोग किया। उन्होंने उस्ली कांचन में एक प्राकृतिक चिकित्सालय की स्थापना की जो अभी भी चल रहा है।

प्राकृतिक चिकित्सा के मूलभूत सिद्धान्त

प्राकृतिक चिकित्सा में स्वास्थ्य संर्वधन, रोगों से बचाव व रोगों को ठीक करने के साथ ही आरोग्य प्रदान करने की अपूर्व क्षमता है। अगर उसे अच्छी तरह से अपनाया जाए तो रोगों का निराकरण बिना खर्च के किया जा सकता है। प्राकृतिक चिकित्सा में समस्त बीमारियों का मूल कारण प्रकृति के नियामें का उल्लंघन करना ही माना जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा के दस मूलभूत सिद्धान्त है।

जिसका पालन करने से मनुष्य अपने स्वास्थ्य का सरंक्षण कर सकेगा।

1) **सभी रोग एक है और उनका कारण भी एक ही है और उनका उपचार भी एक ही है :–** शरीर में विजातीय पदार्थों का संग्रह हो जाना ही रोग का कारण बनता है। इस विजातीय पदार्थो का निष्कासन हो जाना ही चिकित्सा है। प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति का मौलिक सिद्धान्त सभी रोग एक (विजातीय पदार्थ) है। रोग को अलग–अलग नामों से जाना जाता है। उसी प्रकार एक ही विजातीय द्रव्य के अलग अलग स्थान पर एकत्र होने के कारण रोग के अनेको नाम है। अर्थात रोगों का कारण भी एक है और उसका उपचार भी एक ही है विजातीय द्रव्यों का निष्कासन।

2) **तीव्र रोग शत्रु नहीं मित्र होते है :–** तीव्र रोग एक उपचारात्मक प्रयास है। ये हमारे शत्रु नहीं होते। तीव्र रोग जल्दी आते है और जल्दी ही चले जाते है। जीर्ण रोग तीव्र रोगों को दबाने से और गलत उपचार से पैदा होते है। तीव्र रोग बड़ी बीमारी आने व शरीर में विजातीय द्रव्य एकत्रित होने का संकेत देते है। यह हमें पूर्व सूचना प्रदान करते है। इसीलिए ये हमारे मित्र होते है। तीव्र रोग के कारण शरीर से विजातीय द्रव्यों का निष्कासन भी हो जाता है। जैसे – उल्टी, दस्त होने से पेट और आँतों की सफाई हो जाती है। जुकाम व बुखार में यही विजातीय द्रव्य पसीने के रूप में बाहर निकलते है और जीवनी शक्ति का पुनः विकास होने लगता है। तीव्र रोग हमारे विष को बाहर निकालने का कार्य करते है। किन्तु हम घबराकर औषधियों के माध्यम से उनके कार्य में रूकावट डाल देते है। जिससे तीव्र रोग कुछ समय बाद जीर्ण रोग का रूप ले लेते है।

3) **रोग का कारण कीटाणु नहीं :–** रोग का मुख्य कारण कीटाणु नहीं होते। जीवाणु शरीर में जीवनी शक्ति कमजोर होने के कारण एवं विजातीय पदार्थो के संग्रह के पश्चात् ही आक्रमण कर पाते है। जब शरीर में उनके रहने और पनपने लायक अनुकूल वातावरण तैयार हो जाता है। अतः मूलकारण विजातीय पदार्थ है जीवाणु नहीं है।

4) **प्रकृति स्वयं चिकित्सक है :–** प्रकृति स्वयं सबसे बड़ी चिकित्सा है शरीर में स्वयं रोगों से बचने व अस्वस्थ्य हो जाने पर पुनः स्वस्थ्य प्राप्त करने की क्षमता विद्यमान है। प्रकृति जीव का संचालन करती है जो प्रत्येक जीवन के पार्श्व में रहकर उसके जन्म, मरण, स्वास्थ्य एवं रोग आदि का ध्यान रखती है, उस महान शक्ति को जीवनी शक्ति, प्राण आदि कहते है।

प्रकृति हमारी माँ है। माँ की भांति ही हमारा ख्याल रखती है। गलत वस्तु खाने पर उल्टी लाकर गलत वस्तु को हमारे शरीर से बाहर निकालती है। घाव हो जाने पर उसे भरती है। हड्डी टूट जाने पर उसे जोड़ती है। इसीलिए प्रकृति से बड़ा कोई चिकित्सक नहीं है।

5) **चिकित्सा रोग की नहीं सम्पूर्ण शरीर की होती है :–** प्राकृतिक चिकित्सा में चिकित्सा रोग की नहीं बल्कि रोगी की होती है। अन्य चिकित्सा पद्तियों में केवल रोग निवारण पर बल दिया जात है परन्तु

प्राकृतिक चिकित्सा केवल रोग का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण शरीर की चिकित्सा करती है। जिससे रोग स्वतः मिट जाता है क्योंकि रोग का मूल कारण तो शरीर में एकत्र विष है जो अनेक रोगों को जन्म देता है।

6) **प्राकृतिक चिकित्सा में निदान की विशेष आवश्यकता नहीं :–** प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धांत के अनुसार सभी रोग एक है और उनके कारण भी एक ही है ऐसी अवस्था में रोग निदान की विशेष आवश्यकता नहीं रह जाती है। वर्तमान समय में रोग के निदान के लिए बड़ी बड़ी मशीने व उपकरण प्रयोग में लाये जाते है जिनके माध्यम से शरीर में रोग का पता लगाया जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा में किसी भी भी उपकरण की सहायता के बिना आकृति निदान की व्यवस्था है। रोगी की आकृति को देखकर सिर्फ पर पता लगाना है कि शरीर के किस भाग पर विजातीय द्रव्य की अधिकता है। चेहरे को देखकर, गर्दन को देखकर और पेट को देखकर ही रोगों का निदान किया जाता है। जो एक बहुत ही सरल और सहज प्रक्रिया है। रोगी को किसी प्रकार की परेशानी नहीं होती और आर्थिक दबाव बिल्कुल नहीं होता है।

7) **जीर्ण रोगी के आरोग्य में समय लग सकता है :–** जीर्ण रोगी का अर्थ है जिनमें रोग लम्बे समय से बैठा है। उसे समाप्त करने में समय लगता है। जीर्ण रोग न तो बहुत जल्दी आते है और न ही पलक झपकते ठीक हो सकते है। जीर्ण रोग धीरे–धीरे अपनी जड़े जमा लेते है। व जीर्ण रोगों को जड़ से उखाड़ना होता है। इसी कारण जीर्ण रोगों के ठीक होने में समय लगता है। प्राकृतिक चिकित्सा में जीर्ण रोगी के स्वास्थ्य लाभ में समय लगने का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि व्यक्ति हर जगह से थक हार कर इसकी ओर मुड़ता है और फिर अपने साथ जगह–जगह से एकत्र किया हुआ औषधीय विष लेकर आता है जो प्राकृतिक चिकित्सा के कार्य को और भी बढ़ा देता है। जिससे रोगी के आरोग्य लाभ में समय लग सकता है।

8) **प्राकृतिक चिकित्सा में दबे रोग उभरते है :–** प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा दबे रोग भी उभर कर ठीक हो जाते है। वर्तमान औषधीय चिकित्सा में जहाँ उभरे रोग दब जाते है। उसके विपरीत प्राकृतिक चिकित्सा में दबे रोग उभरते है। जिसके कारण कई रोगी अविश्वास करने लगते है कि उनकी बीमारियां बढ़ गई है। जबकि बीमारियां बढ़ती नहीं है बल्कि अप्रत्यक्ष से प्रत्यक्ष में आ जाती है। जिससे उनका उपचार किया जा सकता है।

रोग का तीव्र अवस्था में अलग–अलग स्थानों में विष का बाहर निकलना जो उपद्रव कहलाते है। प्राकृतिक चिकित्सा में इसे सकारात्मक रूप में लिया जाता है, क्योंकि इसका अर्थ है हमारी जीवन शक्ति अपना कार्य कर रही है।

9) **प्राकृतिक चिकित्सा में मन, शरीर तथा आत्मा तीनों की चिकित्सा की जाती है :–**

शरीर, मन और आत्मा तीनों के सामंजस्य का नाम ही पूर्ण स्वास्थ्य है क्योंकि शरीर के साथ मन जब तक स्वस्थ नहीं है तब तक व्यक्ति को पूर्ण स्वस्थ नहीं कहा जा सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सक मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य को उसके शारीरिक स्वास्थ्य से अधिक महत्वपूर्ण मानते है और आत्मिक स्वास्थ्य या बल को सर्वोपरि मानते है, क्योंकि शरीर तभी स्वस्थ होगा जब आत्मा और मन स्वस्थ होता है। इसीलिए प्राकृतिक चिकित्सा शारीरिक स्वास्थ्य के साथ ही महत्–तत्व चिकित्सा, राम नाम चिकित्सा पर भी बल देती है। जिससे मनुष्य आत्म संयम सीख सके और अपनी जीवन शैली को बदलकर सम्पूर्ण जीवन को उचित दिशा दे सके।

10) प्राकृतिक चिकित्सा में उत्तेजक औषधियों के सेवन का प्रश्न ही नहीं :–

प्राकृतिक चिकित्सा में औषधियों का प्रयोग नहीं होता है। औषधियों को अत्याधिक हानिकारक माना जाता है जिससे रोग कम होने के बजाय बढ़ता जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा मानती है कि शरीर औषधि से नहीं बल्कि प्रकृति से निर्मित हुआ है इसलिये पंचतत्वीय शरीर की चिकित्सा के लिए पंच तत्वों का ही प्रयोग किया जाता है। क्योंकि प्रकृति से बड़ा चिकित्सक और कोई नहीं है। प्रकृति के सभी सप्राण खाद्य पदार्थ ही औषधि है। शुद्ध, वायु, धूप, जल आदि ही औषधि है। जो रोग को दूर करने की क्षमता रखते है। इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा में कृत्रिम औषधियों का प्रयोग वर्जित माना जाता है।

पंच महाभूत

आकाश तत्व :– आकाश का अर्थ ''खाली जगह'' होता है इसे अवकाश देने वाला भी कहते हैं। हम चारों ओर से आकाश तत्व द्वारा ही घिरे रहते है। जिस प्रकार पानी में मछली रहती है। उसी प्रकार सभी जीव आकाश तत्व में अपना जीवन यापन करते है। आकाश के बिना मानव या अन्य प्राणियों की कल्पना नहीं की जा सकती।

आकाश तत्व का महत्व :– आकाश को शास्त्रों में पिता भी माना गया है क्योंकि आकाश हमारा पालन करता है, हमारी रक्षा करता है। धरती पर पानी बरसा कर फिर उस बारिश से उगी फसलों से खाने लायक बनाने के लिए मौसम का परिवर्तन लाकर आकाश हमारी रक्षा करता है, सूर्य की उन सभी बूरी किरणों जो हमें नुकसान पहुंचाती है उन्हें रोकता है व हम तक सिर्फ उन्हीं किरणों को जाने देता है जो हमारे लिए लाभदायक है।

वायु तत्व का अर्थ एवं परिभाषा :– वायु तत्व को संस्कृत भाषा में वात कहते हैं। वायु को प्राण और श्वास भी कहा जाता है। वायु मनुष्यों के लिए ही नहीं सम्पूर्ण प्राणी जगत के जीवन का आधार है। प्राणी आहार और जल के अभाव में कुछ दिन जीवित रह सकते हैं। परन्तु वायु तत्व के अभाव में कुछ सैकेण्ड भी नहीं

जी सकता। वायु में एक प्रकार का जीवनदायनी तत्व मिला होता है जिसको ओजोन कहते हैं। जो केवल प्राकृतिक वातावरण में (जैसे– पहाड़,वन, जंगल, नदी, समुद्र) के आस–पास ही पाया जाता है। वायु में नाइट्रोजन अधिक मात्रा में पाई जाती है। वायु में नाइट्रोजन लगभग 78 प्रतिशत तथा ऑक्सीजन 21 प्रतिशत होती है। शेष 1 प्रतिशत अन्य सभी गैसें होती है।

वायु को जीवन का आधार भी कहा जाता है तथा यौगिक भाषा में इसे प्राण भी कहते हैं। अतः यह प्राणियों को प्राण कहलाता है। वायु शब्द को दो भाषाओं में बांटा जाए तो

व + आयु

व का अर्थ है – दीर्घ या लम्बा

आयु का अर्थ है – जीवन

इस प्रकार वायु का अर्थ होता है। दीर्घायु= लम्बा जीवन

प्राणियों में जितना दीर्घ श्वास होता है उतना ही उनका जीवनकाल भी होता है। उदाहरणत मनुष्य 1 मिनट में 16 से 18 बार श्वास लेता है तथा 80 से 120 वर्ष के लगभग अपना जीवन भोगता है। परन्तु यदि एक कुत्ते के श्वास को देखे तो वह एक मिनट में 35–50 बार श्वास लेता है और लगभग 14 से 20 वर्ष की आयु को प्राप्त करता है। इस प्रकार यह बात सिद्ध होती है कि जिसका श्वास जितना दीर्घ होता है। उसका जीवनकाल उतना ही दीर्घ होता है।

जो वायु मनुष्य द्वारा ग्रहण की जाती है वह उसकी आक्सीजन को ग्रहण करके निश्वास द्वारा उस ऑक्सीजन के अशुद्ध रूप कार्बन डाई ऑक्साइड को बाहर निकाल लेता है। मानव प्रति मिनट में 16 से 18 श्वास, 21800 श्वास प्रतिदिन लेता है। जिससे प्रत्येक कोशिका का कार्य, पेशीय संकुचन, ग्रन्थि स्त्राव और मानसिक क्रिया आदि के संचालन हेतु ऊर्जा का उत्पाद होता है। श्वास लेने की क्रिया का सम्बन्ध शरीर की सांसे अधिक मांसपेशियों से होता है। प्रतिदिन जितना भोजन हम करते है और जल पीते हैं। उससे लगभग सात गुणा वायु भक्षण करते हैं। हमारे द्वारा ग्रहण की गई वायु नासिका से फेफड़ों के 15 वर्ग फुट से अधिक का चक्कर लगाती है। श्वास लेने पर फेफड़ों में 60 घन वायु सदैव मौजूद रहती है तथा निश्वास में 25 से 35 घन इंच वायु बाहर कर दी जाती है।

वायु को प्राण भी कहते हैं।

ऋग्वेद के अनुसार **''वाल आ वातु भेषज शंभु मर्याभुवोहदे!**

प्राण आर्याष तारिषत्।।''

अर्थात् वायु वह प्राण है जो हमें लम्बी आयु प्रदान करती है तथा यह वायु हमारे हृदय में शान्ति पैदा करके सुख प्रदान करने वाली होती है।

अर्थवेद के अनुसार

''आयुः प्राणः प्राणो वा आयुः।।''

प्राण आयु प्रदान करने वाली है तथा जिस जीव में जितना अधिक व दीर्घ प्राण होगा उतना ही दीर्घ जीवन व आयु व प्राप्त करता है।

अग्नि तत्वः—

मनुष्य के शरीर में दो प्रकार की अग्नि रहती है।

1) एक जिसे हम जठराग्नि कहते है।

2) दूसरी जिसे वैश्वानर अग्नि कहते है।

जठराग्नि आमाशय में भोजन को पचाने का काम करती है तथा वैश्वानर अग्नि वह है जो नाभि के पास रहती है। इससे सूक्ष्म प्राण पैदा होता है, यह सूक्ष्म प्राण स्थूल प्राण से मिलता है। शरीर में इस अग्नि का समावस्था होने पर ही शरीर में उचित व्यवस्था बनी रहती है एवं शरीर स्वस्थ रहता है। आयुर्वेद के अनुसार शरीर में तीन दोष उपस्थित रहते है – वात, पित्त, कफ। ये तीनों सम अवस्था में रहें तो शरीर ठीक रहता है तथा शक्ति में वृद्धि होती है।

अध्यात्म के अनुसार अग्नि का स्वरूप :—

प्रकाश अग्नि का स्वरूप है। अध्यात्म के अनुसार प्रकाश ही जीवन है, अब यह मान्यता तथ्य के रूप में प्रकट और प्रत्यक्ष होती जा रही है और उस शास्त्रीय धारणा के निकट पहुँचती जा रही है, जिसमें कहा गया है कि जीव की मूल सत्ता ज्योतिस्वरूप है। हिन्दू संस्कृति के अनुसार जो मान्यता है कि जो ब्रहमाण्ड में उपस्थित है वह सब शरीर में भी उपस्थित है इसमें पंच तत्वों की धारणा भी एक है, बाहर दिखने वाले पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश के सदृश्य ही शरीर में उपस्थित प्रकाश अग्नितत्व का ही प्रतीक है।

मानव अपने शरीर का पोषण दो तरह से करता है, एक तो सीधे सूर्य प्रकाश के माध्यम से तथा दूसरा खाद्य पदार्थो, जल एवं वायु से।

अग्नि तत्व की परिभाषा :—

पंच तत्वों में अग्नि तत्व तीसरा उपयोगी तत्व होता है। अग्नि, जल, पृथ्वी दृश्य तत्वों में प्रमुख दृश्य तत्व अग्नि ही होता है। आकाश और वायु तत्व को महान तत्व माना जाता है। भारतीय संस्कृति में अग्नि तत्व को अग्नि देवता मानकर उसकी पूजा अर्चना का नियम भी बताया गया है। अग्नि तत्व को परिभाषित करते हुए ऋग्वेद में वर्णन मिलता है कि ''अग्निमी दे पुरोशितम्''

इस मन्त्र में अग्नि तत्व को ईश्वर के समान मानकर उसकी प्रार्थना की गई है।

अग्नि तत्व का महत्व :—

अग्नि तत्व हमारे शरीर में गर्मी को उत्पन्न करके शरीर में उपस्थित जल को नियन्त्रित करता

है। जिससे हमारे शरीर को शक्ति प्राप्त होती है। अग्नि तत्व हमारी दृष्टि को नियन्त्रित करता है। हमारे शरीर में प्राप्त अग्नि शक्ति भोजन का पाचन करके शरीर को शक्ति प्रदान करती है। हमारे शरीर में उपस्थित धातु इस अग्नि को जठराग्नि के नाम से जानते हैं। इससे अधिक भूख एवं प्यास लगती है।

शरीर में यदि अग्नि तत्व की कमी हो जाये तो हमारा शरीर अनेकानेक रोगों से ग्रसित हो जाता है। पंच तत्वों से निर्मित हमारे शरीर में सभी तत्वों तत्वों का उपयुक्त अनुपात में होना आवश्यक होता है। अग्नि तत्व की कमी शरीर में रक्त अल्पता को बढ़ा देती है। पीलिया, पाचन सम्बन्धी रोग व्यक्ति को अपना ग्रास बना लेते है। अग्नि तत्व की कमी मानसिक विकास, अव्यवस्था, आँखों की रोशनी कम होना, मोतियाबिन्द, गैस तथा विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते है। इसलिए विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों में अग्नि तत्व की सुरक्षा और अग्नि तत्व को विशेष महत्व दिया गया है।

हमारे जीवन में सुख–दुख, पाप–पुण्य, काम–क्रोध, लोभ, मोह, प्रेम आदि सभी वृत्तियां और संस्कार भी सूर्य की किरणों के प्रभाव से ही होते है। लोहे को सोना बनाना तथा मृत व्यक्तियों को जीवित करना भी सूर्य विज्ञान से ही सम्भव हो सकता है। सूर्य विज्ञान के विशेषज्ञ हिमालय और तिब्बत में आज भी गुप्त रूप से विद्यमान है।

सूर्य में जितनी रोग नाशक शक्ति मौजूद है उतनी संसार की किसी भी वस्तु में नहीं है। सूर्य का प्रकाश जो हमें श्वेत दिखाई देता है, वास्तव में सात रंगों का मिश्रण है। पुराणों में सूर्य के सात घोड़े होने की कथा इसी आधार पर है। इन्द्र धनुष में भी सात रंगों के दर्शन किये जा सकते है।

हमे विज्ञान में प्रत्येक रंग के नाम के प्रथम अक्षर से लेकर VIBGYOR से सूचित किया जाता है।

1) V - Violet बैंगनी
2) I - Indigo गहरा नीला
3) B - Blue हलका नीला
4) G- Green हरा
5) Y - Yellow पीला
6) O - Orange नारंगी
7) R- Red लाल

जल तत्व का अर्थ परिभाषा एवं महत्व

जल तत्व :–

जल ही जीवन है। जिस प्रकार पृथ्वी में दो तिहाई भाग जल तथा एक तिहाई भाग थल है। ठीक उसी प्रकार शरीर में भी पानी की मात्रा होती है। जिस प्रकार पानी से भरी ट्यूब में छेद करने पर पानी ही बाहर आता है इसी प्रकार शरीर के कट जाने पर रक्त रूप में जल ही बाहर आता है जिस प्रकार पृथ्वी में जल अन्य

तत्वों से अधिक है उसी प्रकार हमारा शरीर भी रक्त की नलिकाओं से भरा हुआ है।

अर्थ एवं स्वरूप :–

जल एक रासायनिक पदार्थ है। जल के एक अणु में दो हाइड्रोजन परमाणु होते है जो एक ऑक्सीजन परमाणु के साथ सहसंयोजी वंध के द्वारा जुड़े रहते है। जल प्रकृति में द्रव्य की तीन सामान्य अवस्थाओं में पाया जाता है और पृथ्वी पर भिन्न रूप ले सकता है ठोस रूप में बर्फ, बादल रूप में वाष्प, तरल रूप में जल।

जल प्रकाश संश्लेषण और श्वसन की प्रक्रिया में भी महत्वपूर्ण है। प्रकाश संष्लेशी कोशिकाएं सूर्य की ऊर्जा का उपयोग करके जल के अणु को हाइड्रोजन और ऑक्सीजन में तोड़ देती है। हाइड्रोजन, कार्बन डाइऑक्साइड के साथ मिलकर ग्लूकोज बनाती है और इस प्रक्रिया में ऑक्सीजन सी मुक्त होती है।

चिकित्सा संस्थान के अनुसार औसतन एक महिला का 2.2 लीटर और एक पुरूष को 3.0 लीटर प्रतिदिन पानी की आवश्यकता होती है। सामान्य रूप से 20 प्रतिशत जल खाद्य पदार्थो के साथ ही शरीर में जाता है। जल को कई रूपों में शरीर से उत्सर्जित किया जाता है। जैसे – मूत्र, मल, पसीने एवं श्वास के दौरान जल वाष्प का उत्सर्जन करते है।

जल तत्व का महत्व :–

दैनिक जीवन अर्थात रोज किया जाने वाला व्यवहार न केवल मनुष्य बल्कि सृष्टि में उपस्थित सभी जीव जन्तु, पशु–पक्षी एवं पेड़–पौधों को भी जीवन जीने के लिए जल की आवश्यक आवश्यकता होती है। जल को अनेक रूपों में भिन्न–भिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयोग किया जाता है।

जिनका वर्णन इस प्रकार से है –

(1) खाने–पीने में उपयोग

(2) स्नान में उपयोग

(3) कपड़े धोने में उपयोग

(4) बर्तन धोने में उपयोग

(5) शौच में उपयोग

(6) धुलाई में उपयोग इत्यादि

उपरोक्त समस्त क्रिया अपनी रोज की दिनचर्या में करता ही है और ये सभी क्रियाएअत्यन्त आवश्यक क्रिया होती है जल के अभाव में इनका व्यवहार सम्भव नहीं होता है।

जल और प्राण का सम्बन्ध आपस में बहुत गहरा है। जिस प्रकार पानी के अभाव में मनुष्य, पशु–पक्षी वनस्पति सब मुरझा जाते है, समाप्त भी हो जाते है ठीक उसी प्रकार प्राण भी जल के अभाव

में समाप्त हो जाते है। ऋषियों ने तो जल को प्राण के समक्ष ही बताया है। कहा भी है कि प्राण और जल का स्वरूप मिलता है। मनुष्य जो अन्न खाता है उसका रस जल रूप ही होता है और वह सात धातुओं (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र) में प्रथम धातु होता है। अन्तिम धातु शुक्र अर्थात वीर्य होती है। अतः हम कह सकते है कि वीर्य पर्यन्त सभी धातुओं की उत्पत्ति और परिणाम का मूल उत्पादक भी है।

शास्त्रों में वर्णित वरूण देवता को जल का देवता माना जाता है। इन्हें समुद्र का भी देवता माना जाता है। समुद्र के स्नान करने से सभी प्रकार के चर्म रोग दूर होते है। इसी के साथ रक्त संचार सुचारू रूप से होता है। पाचनशक्ति बढ़ती है। इस प्रकार अनेक रूप से यह आरोग्य प्रदान करता है। उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि जल अपने गुणों के कारण विभिन्न प्रयोगों में अपनी महत्ता बनाये रखता है।

पृथ्वी तत्व का अर्थ, परिभाषा एंव महत्व

सम्पूर्ण तत्वों, पदार्थो एंव धातुओं को धारण करने के कारण इसे धरती कहा जाता है। रत्नों को धारण के कारण इसे वसुन्धरा एंव रत्ना कहा जाता है। पृथ्वी तत्व के अर्थ को स्पष्ट करते हुए वेद में कहा गया –

''पृथ्वी माता धौः नः पिता'

अर्थात् पृथ्वी हमारी माता और आकाश पिता है, आत्मा से आकाश की उत्पति हुई, आकाश तत्व से वायु तत्व उत्पन्न हुआ, वायु तत्व से जल तत्व, जल से पृथ्वी तत्व, पृथ्वी तत्व से औषधियों, वनस्पतियों, अन्न की एंव अन्न से मनुष्य की उत्पत्ति हुई।

पृथ्वी तत्व का सामान्य अर्थ मिट्टी से लिया जाता है। पुरानी वस्तुओं को मिटाने के कारण पृथ्वी को मिट्टी की संज्ञा भी दी जाती है। यह मिट्टी नई नई वस्तुओं, पदार्थो एंव वनस्पतियों को उत्पन्न करती है तथा उत्पन्न हुई वस्तुओं को अपने में मिलाकर समाप्त कर देती है।

पृथ्वी तत्व के संदर्भ में पुरातन मान्यता :–

प्राचीन काल में मनुष्य का पृथ्वी के साथ बहुत गहना नाता था। प्राचीन काल में मनुष्य अपना सम्पूर्ण जीवन इसी पृथ्वी तत्व के संसर्ग में होकर व्यतीत करते थे। पृथ्वी पर नंगे पैर चलना, मिट्टी से बने घरों में रहना, मिट्टी से बने बर्तनों में खाना, पृथ्वी पर सोना एंव पृथ्वी का पूजन प्रत्येक व्यक्ति का धर्म था। इस काल में पृथ्वी उत्पन्न खाद्य पदार्थो को बिना आग के सम्पर्क में लाए अर्थात उसी रूप में खाने की प्रथा थी। इसका परिणाम यह होता था कि मनुष्य के शरीर में पृथ्वी तत्व पूर्णावस्था को प्राप्त करता था।

पृथ्वी तत्व के संदर्भ में आधुनिक (चिकित्सकीय) मान्यता :–

आधुनिक काल में मनुष्य ने पृथ्वी तत्व से स्वयं को इससे अलग किया तो अनेकों प्रकार के शारीरिक एंव मानसिक रोग उत्पन्न हुए। जब इन रोगों के संदर्भ में अनुसंधान किए गए तो इनका कारण शरीर में पृथ्वी तत्व की विकृति पायी गयी तब पृथ्वी तत्व की ओर चिकित्सकों का ध्यान आकर्षित हुआ। चिकित्सकों ने यह मान्यता दी की अधिक गर्म किए हुए तले–भूने एंव गरिष्ठ आहार का पृथ्वी तत्व नष्ट हो जाता है तथा यह आहार ग्रहण करने से शरीर में रोग उत्पन्न होते है इसलिए यहां पर पुनः आहार को प्राकृतिक रूप में ग्रहण करने का निर्देश दिया गया जिससे कि उसका पृथ्वी तत्व नष्ट न हो।

आधुनिक काल में स्वस्थ रहने के लिए पृथ्वी तत्व चिकित्सा का निर्देश दिया गया तथा इस सम्बन्ध में मिट्टी की पट्टी, मिट्टी का लेप, पंक स्नान, बालू भक्षण आदि प्रविधियों का अविष्कार किया गया।

पृथ्वी तत्व की परिभाषा :–

पंच तत्वों में पृथ्वी तत्व सबसे स्थूल और आकार युक्त तत्व के रूप में परिभाषित किया गया। यह तत्व इस संसार में दिखलाई देने वाले सभी पदार्थो में विद्यमान है। इस तत्व का सामान्य अर्थ मिट्टी से होता है। पृथ्वी का मूल घटक होने के कारण इस तत्व का अर्थ मिट्टी से ग्रहण किया जाता है। यह मिट्टी मानव शरीर को आहार के रूप में पृथ्वी तत्व प्रदान करती है।

पृथ्वी तत्व पर प्रकाश डालते हुए महाकवि तुलसीदास कहते है :–

क्षिति जल, पावक, गगन, समीरा।

पंच रचित यह अधम सरीरा।।

अर्थात् क्षैतिज पृथ्वी जल, अग्नि, वायु और आकाश यह पांच तत्व मिलकर जड़ शरीर की रचना करते है। यहां पर शरीर महत्व की रचना करने वाले पांच तत्वों में सबसे प्रथम तत्व के रूप में पृथ्वी तत्व का वर्णन किया गया।

महत्व :– पृथ्वी तत्व मानव शरीर की रचना करने वाला प्रथम मूल तत्व है। शरीर में पृथ्वी तत्व की पूर्णता रहने पर शारीरिक अंगो का भलीभांति विकास होता है, अंगो की क्रियाशीलता बनी रहती है एंव मनुष्य स्वस्थ, हष्ट–पुष्ट, निरोगी एंव बलवान रहता है। इसके विपरीत शरीर में पृथ्वी तत्व की विषमता शरीर को ऊर्जाहीन, बलहीन एंव रोगो से युक्त बनाती है।

पृथ्वी तत्व के महत्व का ज्ञान इस तत्व के गुणों से होता है।

पृथ्वी तत्व के गुण :–

क) गुरूत्वार्कषण शक्ति :–

पृथ्वी प्रत्येक पदार्थ को अपनी ओर आकर्षित करने का गुण रखती है, इसी कारण जो व्यक्ति इस तत्व के अधिक सम्पर्क में रहते है उनका शरीर स्वच्छ एव गन्दगियों (विजातीय द्रव्यों) से मुक्त

रहता है।

ख) **अपमार्जक गुण :–**

यह सभी मृत एवं सडे पदार्थो का अपमार्जन करती है। सडे पदार्थो की दुर्गन्ध को सोख लेती है तथा इन पदार्थो को सरल रूप में विघटित कर देती है।

ग) **विषशोषण का गुण :–**

पृथ्वी तत्व सभी प्रकार के विषो को शोषित करने का गुण रखती है। इस कारण बर्र, ततैया, मधुमक्खी, बिच्छु एंव सांप आदि जहरीले जीवों के काट लेने पर उस स्थान पर मिट्टी का लेप करने से आराम मिलता है।

घ) **शुद्ध करने का गुण :–**

हाथ–पैर एवं शरीर के गन्दे होने पर पृथ्वी तत्व का प्रयोग करने से हाथ–पैर एंव शरीर शुद्धता को प्राप्त होता है।

ड़) **उष्मा एंव शीतलता ग्रहण करने का गुण :–**

पृथ्वी तत्व के इसी गुण का उपयोग प्राकृतिक चिकित्सा में किया जाता है तथा मिट्टी की गर्म एवं ठण्डी पट्टीयाँ बनाकर उनमें शरीर में उष्णता एंव शीतलता का विस्तार किया जाता है।

स्वास्थ्य

स्वास्थ्य प्रकृति की स्वाभाविक देन है। देव दुर्लभ मानव शरीर को स्वस्थ रखें बिना प्राणी अपने लक्ष्य तक पहुँच नहीं पाता। स्वास्थ्य शब्दः– स्व+स्थ से बना है जिसका अर्थ है जो स्वयं में स्थित हो वह स्वस्थ कहलाता है।

स्वास्थ्य की परिभाषाएं:–

महर्षि चरक के अनुसारः– ''त्रय उपस्तम्भा आहारः स्वप्नोब्रह्मचर्यमिति'' स्वस्थ शरीर के तीन उपस्तम्भ माने गये हैं आहार, निद्रा, एवं ब्रह्मचर्य।

स्वास्थ्य का शाब्दिक अर्थ है '' शरीर एवं मस्तिष्क का ऐसी अवस्था में होना चाहिए जिससे सभी कार्य सुचारू रूप से कर सकें।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) के अनुसारः– शरीर को मात्र रोगों से बचाकर रखना अथवा अशक्त न होना ही स्वास्थ्य नहीं है अपितु स्वास्थ्य से अभिप्राय सम्पूर्ण भौतिक, मानसिक एवं सामाजिक अवस्था में स्वस्थ रहने से है।

यजुर्वेद के अनुसारः–

शतं वो अम्ब धामनि सहस्त्रमुत वोरूहः।

अधा शतक्रत्वो पूयमिमं में अगदंकृत।। (12/76)

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का प्रमुख साधन मनुष्य का शरीर है इसीलिए उचित आहार, संयमित विहार आचरण में पथ्य का ध्यान रखकर अपना आरोग्य स्थिर रखना चाहिए। रोग रहित शरीर ही सर्व सुखों का मूल है।

स्वास्थ्य की अवधारणाः-

स्वस्थ का अर्थ :– स्व अर्थात अपने में,

स्थ यानि स्थित होना

स्वास्थ्य की परमात्मा ने सारी व्यवस्था व्यवस्थित रूप से शरीर के अन्दर ही स्थित कर रखी है। बड़े आश्चर्य का विषय है कि आरोग्य प्राप्ति हेतु रोगी बाहर की और स्वास्थ्य लाभ हेतु दौड़ रहा है।

स्वास्थ्य की परिभाषा :–

आचार्य सुश्रुत के अनुसार ''**समदोषः समाग्निश्च समधातु कालः क्रिया।**

प्रसन्नात्मेन्दियमना स्वस्थ इत्यमिधयीते।।

अर्थात् सभी दोष, धातु, अग्नि, मल क्रिया आदि जिसकी सम हो। इन्द्रिया, मन और आत्मा प्रसन्न हो वही स्वस्थ है।

1) **समदोष :–** अर्थात् शरीर की सभी क्रियाओं को संचालित करने वाले तीनों दोष (वात–पित्त एवं कफ) जब सम अवस्था में रहते है तब शरीर स्वस्थ रहता है।

2) **समाग्नि :–** मानव शरीर में 5 भूताग्नि पंचतन्त्र (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश) एवं 7 धात्वाम्नि (रस, रक्त, मांस,मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र) एवं सबसे सुपर पावर ''जठराग्नि'' इस प्रकार इन 13 अग्नियों की समान स्थिति ही खाये हुये अन्न का सम्पक् पाचन करती है जो स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

3) **समधातु :–** हमारे शरीर में सात धातुएं रहती है। सप्त धातुओं से शरीर बलवान एवं पुष्ट बनता है। जब इन धातुओं की न्यूनता या अधिकता होती है। तो दुबलापन या मोटापन आदि लक्षण प्रकट होकर अस्वस्थता हो जाती है। ये 7 धातुयें रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र है।

4) **सम मलक्रिया :–** हमारे शरीर से निकलने वाले मल यथा – मल–मूत्र, पसीने का निर्माण एवं उनका सतत् नियमित रूप से शरीर से निष्कासन होना आरोग्य का लक्षण है।

5) **इन्द्रियों की प्रसन्नता :–** मनुष्य शरीर में पांच कर्मेन्द्रियां एवं पांच ज्ञानेन्द्रियां अपने–अपने कार्य को सामान्य रूप से प्रसन्नतापूर्वक करे तो स्वास्थ्य की स्थिति बनती है।

6) **मन की प्रसन्नता :–** अणुत्व एवं एकत्व ये दोनों मन के गुण है। मन में तीन प्रकार के यथा (1) सात्विक (2) राजसिक (3) तामसिक की प्रधानता होती है। स्वस्थ व्यक्ति के मन में सदैव प्रसन्नता का भाव रहता

है।

7) **आत्मा की प्रसन्नता :–** परोपकार से बढ़कर 'पुण्य नहीं एवं दूसरे को पीड़ा पहुंचाने के बराबर 'पाप' नहीं उक्त 'परोपकार के भाव से, निस्वार्थ सामाजिक सेवा कार्य करने से और दीन दुखियों की मदद करने से 'आत्मा की प्रसन्नता' होती है।

WHO के अनुसार :– जो मानव शरीर से, मन से, सामाजिक तौर पर और आध्यात्मिक दृष्टि से बीमार नहीं है वहीं व्यक्ति स्वस्थ है।

स्वास्थ्य के प्रकार:- विश्व स्वास्थ्य संगठन की परिभाषा के अनुसार स्वास्थ्य के तीन प्रमुख प्रकार हैं।

1. शारीरिक स्वास्थ्य (Physical Health)
2. मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health)
3. सामाजिक स्वास्थ्य (Social Health)

योग तथा प्राकृतिक चिकित्सा चौथे अंग को भी विशेष महत्व देती है, वह है

4. आध्यात्मिक स्वास्थ्य (Spritual Health)

1. शारीरिक स्वास्थ्य :- शारीरिक स्वास्थ्य से तात्पर्य शारीरिक क्रियाओं की समानता तथा शारीरिक तन्त्रों की सामान्य कार्यात्मकता से होता है। यदि सामान्य रूप से शरीर के बाह्य तथा आन्तरिक अंग कार्य करते रहते है, तो शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा माना जाता है।

शारीरिक स्वास्थ्य के निम्न लक्षण है:-

1. अच्छा चेहरा, भरा चेहरा, चेहरे पर सामान्य चमक तथा लालिमा।
2. चमकीली आँखों में लावण्य।
3. साफ सुथरी त्वचा।
4. सुगठित शरीर, न अधिक मोटा न अधिक पतला ।
5. प्रगाद निद्रा बिना स्वप्न के।

2. मानसिक स्वास्थ्य :- मानसिक स्वास्थ्य एक सतुंलित मनोदशा की अवस्था होती है जिसमें व्यक्ति अपनी जिन्दगी के विभिन्न हालातों में सामाजिक रूप से तथा सार्वेगिक रूप से एक मान्य व्यवहार बनाए रखता है।

मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति के लक्षण:-

1. आत्म विश्वास व आत्म सम्मान की भावना।
2. विचार करने की पूर्ण क्षमता।
3. बुद्धि व विवेक के द्वारा निर्णय लेने की पूर्ण क्षमता।
4. स्वत: स्फूर्ति।

5. यथेष्ठ सुरक्षा।

6. समयानुसार व्यवहार करना।

7. धैर्य व उत्साह का बना रहना।

8. अपनी शक्ति व योग्यता का सही ज्ञान।

9. दूसरों के प्रति सम्मान और श्रद्धा का भाव।

10. अनुभव से सीखने की क्षमता।

11. कर्मकुशलता एवं कर्मठता।

12. मन में सदैव प्रसन्नता व प्रफुल्लता का अनुभव करना।

3. सामाजिक स्वास्थ्य (Social Health):- सामाजिक स्थिति का व्यक्ति के जीवन में विशेष महत्व है। समाज में रहने हेतु उसका सामाजिक स्वास्थ्य का ठीक रहना परम आवश्यक है।

1. दूसरों के साथ उचित व्यवहार करना।

2. दूसरों का मान-सम्मान करना।

3. समाज कल्याण की भावना रखना।

4. पारिवारिक समायोजन का होना।

5. नेतृत्व की भावना का होना।

6. प्रभावकारी जीवन जीना।

7. उत्तरदायित्वों की पूर्ति करना।

8. दूसरों के प्रति प्रेम, करूणा, दया, सहानुभूति, त्याग व संवेदन की भावना रखना।

9. भाईचारा का व्यवहार बनाये रखना।

4. आध्यात्मिक स्वास्थ्य (Shirtual Health):- आध्यात्मिक जीवन जीने से ही आध्यात्मिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। मन को प्रसन्न रखने,बुद्धि की विकृतियों से बचाने, चित पर शिव सस्कांरों की छाप डालने और अंहकार को परमात्मा की ओर उन्मुख करने से अन्तःकरण शुद्ध व निर्मल हो जायेगा। फिर उसे आत्म दर्शन का लाभ मिल पायेगा।

आध्यात्मिक रूप से स्वरूप व्यक्ति की विशेषताएं।

1. असीम सत्ता, प्रकृति, आत्मा व परमात्मा में विश्वास।

2. कर्म ही पूजा है में विश्वास अर्थात् एकाग्रचित होकर अपने कार्यो का निर्वाहः।

3. निष्काम भाव अर्थात् आसक्ति रहित होकर अपने कर्मो को निरन्तर करते रहना।

4. सभी जीवों पर दया करना।

5. सत्य तथा अहिंसा में विश्वास करना।

6. संतोष करना।

7. इन्द्रियों पर सयंम रखना।

8. सद्‌विचार, सद्‌इच्छा व शुभ संकल्पों को सदैव अपनाएं रखना।

स्वस्थ जीवन के मूलभूत नियमः-

स्वास्थ्य ही जीवन है। यदि स्वास्थ्य अच्छा है तो व्यक्ति सुखी और सम्पन्न दिखायी देता है।निर्धनता के अभाव में भी वह उत्साही कार्यनिष्ठ तथा आत्मशक्ति से भरपूर होता है।

निम्नलिखित नियमों का पालन करने से स्वस्थ्य सदैव उत्तम बना रहता है, रोग पनपते नहीं है तथा आयु दीर्घ होती है।

1. उचित भोजनः- (1) प्रत्येक दिन भोजन को साथ सलाद लेना चाहिए। जैसे ककड़ी,टमाटर, मूली, पत्तागोभी, खीरा आदि।

2. हरी सब्जियों का प्रयोग करने से रक्त शुद्ध रहता है तथा शक्ति वर्धन होता है।

3. मौसमी फलों का सेवन करने से सभी विटामिनों की पूर्ति हो जाती है।

4. भोजन ताजा ही खाना चाहिये।

5. पानी पर्याप्त मात्रा में पीना चाहिए व भोजन के तुरन्त बाद पानी न पीयें।

2. चाय या काफी के सेवन के स्थान पर आयुर्वेदिक चाय व काफी।

3. आकुंरित अनाज सेवन: इससे भोजन के सभी तत्व प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, खनिज, विटामिनस की पूर्ति होती है।

4. षटकर्म द्वारा शरीर की शुद्धि।

5. प्राणायाम का अभ्यास प्रतिदिन करना चाहिए।

6. स्वच्छ वायु सेवनः- स्वच्छ वायु में काम करना, रहना तथा खेलना सभी कुछ लाभंकारी होता हैं स्वास्थ्य के लिए स्वच्छ वायु तथा सूर्य प्रकाश-शक्तिवर्धन का कार्य करता है।

7. तेल मालिशः- हमारी त्वचा के भीतर दो प्रकार की ग्रन्थियाँ हैं पहल तेल की ग्रन्थि तथा दूसरी पसीने की ग्रन्थि। तेल की ग्रन्थि शरीर को चिकना और मुलायम बनाकर रखती है।जाड़े के दिनों में चर्म शुष्क और रूखी हो जाती है। अत: तेल मालिश जरूरी हो जाती है, साथ ही रक्त संचालन भी सही रहता है। इससे शरीर दृढ़,मजबूत और शीघ्र स्वस्थ होता है।

8. सूर्य प्रकाश सेवनः- सूर्य प्रकाश अनेकानेक रोगों को नष्ट करना है तथा स्वस्थ्य को सम्पन्न बनाने में अनेक पोषक तत्वों को प्रदान करता है। स्वास्थ्य लाभ ऊष्णता से नहीं बल्कि किरणो से होता हैं अत: शीतल किरणों का उपयोग करना बताया जाता है। प्रात: काल का समय प्रकाश सेवन के लिए उत्तम होता है।

9. गहरी श्वास प्रश्वासः- श्वास ही जीवन है। गहरी श्वास उसी प्रकार शरीर को शक्ति प्रदान करती है, जैसे

धौकनी आग को प्रज्जवलित कर देती है। गहरी श्वास से अधिकाधिक ऑक्सीजन शरीर के विभिन्न अंगों को जाती है साथ ही गहरी प्रश्वास से अधिकाधिक कार्बन डाईआक्साईड बाहर निकलती है।

10. स्नान तथा सफाई:– शरीर में हजारों रोमकूप होते हैं इन रोमकूपों के द्वारा शरीर से विजातीय तत्व पसीने के रूप में बाहर निकलता है स्नान करने से ये रोमकूप साफ सुथरे बने रहते हैं।

11. वस्त्राधारण:– शरीर की सर्दी तथा गर्मी से रक्षा करने के लिऐ वस्त्रों का पहनना आवश्यक है। सूती कपड़े शरीर के लिये लाभकारी होते हैं।

12. सकारात्मक दृष्टिकोण:– दूसरों से अच्छे गुणों को देखने से व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य अच्छा बना रहता है।

13. योगाभ्यास एवं व्यायाम:– योगाभ्यास साधन है जिससे शरीर के प्रत्येक अंग की क्रिया हो जाती है। इससे शारीरिक थकान दूर होती है और नयी स्फूर्ति आती है तथा मानसिक सर्तकता शीघ्र ही परिलक्षित होती है। व्यायाम शारीरिक क्षमता और रोगों का निवारण करने का प्राकृतिक उपाय माना गया है।

14. आराम, विश्राम तथा मनोरंजन:– उन तीनों स शारीरिक व मानसिक ऊर्जा व स्फूर्ति की प्राप्ति होती है।

रोग की अवधारणा

भारत में वर्तमान समय में 'भोगवादी संस्कृति' से ऐसे समाज का निर्माण हो रहा है। जिसमें ज्यादातर व्यक्ति किसी न किसी रोग से ग्रस्त है। आज जीवनी शैली जन्म रोगों एवं रोगियों की संख्या में दिन दूनी रात चौगुनी अभिवृद्धि हो रही है। कब्ज व घुटनों का दर्द, कमर का दर्द, उच्च रक्तचाप, मधुमेह, अस्थमा, मोटापा, नपुसंकता, तनाव, अनिद्रा, थाइराइड़ जैसे रोगों ने सम्पूर्ण विश्व में रोगियों में त्राहि–त्राहि मचा रखी है।

रोग के कारण :–

1) **मानसिक तनाव :–** आज की भागम–भाग की जिन्दगी में, रोजाना की वैश्विक व्यापार प्रतिस्पर्धा के युग में छोटी–छोटी बातों से ही व्यक्ति का तनावग्रस्त होकर अन्तः स्त्रावी ग्रंथियों, हार्मोन्स, एंजाइम्स, विटामिनों पर दूषित असर होते हुये रोगग्रस्त होना प्रायः देखा जा रहा है।

2) **पर्यावरण प्रदूषण :–** आज के इस यान्त्रिक युग में वाहनों और कारखानों के धुएं तथा घटते वन और हरियाली, खेतों में अन्न के अधिक उपज की मानसिकता के कारण रासायनिक खाद एवं कीटनाशकों के कारण पानी, हवा एवं उत्पादित आहार सामग्री अब कुछ प्रकृति में चारों तरफ प्रदूषण ही प्रदूषण नजर आता है। इस प्रकृति के प्रदूषण के कारण ''इम्यूनिटी पावर'' तेजी से घटता हैं शरीर के रक्त में स्थित WBC प्लेटलेटस प्रभावित होकर 'चर्म रोग' एलर्जी के रोग, श्वास (दमा) के रोग तेजी से बढ़ रहे है।

3) **व्यसन एवं दवाईयों का सेवन :–** अत्याधिक चाय–कॉफी बाजार में उपलब्ध प्रोटीन युक्त पाऊडर जो टी.वी. के माध्यम से 'हेल्थ टॉनिक' के रूप में दुष्प्रचारित किये जा रहे है। कोल्ड़ ड्रिक्स, तम्बाकू के उत्पादक, मद्यपान, स्मेक, गांजा, चरस, नशीली गोलियां, बिना डॉक्टर से पूछे दवाईयों का सेवन, दवाओं का ''साइड़ इफेक्ट'' (विपरित प्रभाव) भी रोगों का वर्तमान में प्रमुख कारण बनता जा रहा है।

रोग की दो प्रकार की प्रकृति होती है।

क) **निजरोग :–** जो वातचिन्त (वात–पित्त–कफ के असन्तुलन) से उत्पन्न होते है वे निजरोग कहलाते है।

ख) **आगन्तुज रोग** :– बाह्य कारणों कीटाणु–अभिघात संक्रमण आदि से उत्पन्न होने वाले रोग आगन्तुज रोग कहलाते है।

विजातीय द्रव्य सिद्धान्त

विजातीय द्रव्य का अर्थ :– ऐसे द्रव्य जो शरीर को पोषण नहीं देते अपितु उसके विनाश का कारण बनते है, ऐसे दोषों को विजातीय द्रव्य कहते है। सम्पूर्ण शरीर में रोगोत्पत्ति का एक प्रधान कारण है वह विजातीय द्रव्य कहलाता है। शरीर में मलों का जमाव ही विजातीय द्रव्य कहलाता है।

शरीर के अन्तर्गत वे भी पदार्थ जो बेकार है, एवं रोगोत्पति का प्रधान कारण है वे सभी विजातीय द्रव्यों के अन्तर्गत आते है। आयुर्वेद शास्त्र में उसे त्रिदोषों का असंतुलन कहा गया है।

विजातीय द्रव्य वृद्धिकारक भाव :–

1) विषैली दवाईयों के अन्धाधुंध सेवन करने से।

2) मुंह मार्ग के द्वारा प्रदूषित अशुद्ध जल के सेवन से।

3) दुर्व्यसनों का सेवन यथा गुटका, जर्दा, बीड़ी, सिगरेट, अफीम, भांग चरस, गांजा, स्मैक, मद्यपान, तम्बाकू द्वारा निर्मित पाउच में मिश्रत विष द्रव्य आदि के द्वारा विजातीय द्रव्य की बढ़ोतरी होती है।

4) प्रकृति में स्थित विषैले जीव जन्तु, मधुमक्खी, सांप, बिच्छु, पागल, कुत्ते व चौपाये जानवर द्वारा काट खाना आदि से शरीर में प्रवेशित विषजन्य पदार्थ विजातीय द्रव्य को शरीर में बढ़ाते है।

5) वे सभी दुष्ट प्रदूषित आहार एवं विहार जो शरीर में जाकर धातुओं को दुष्ट करते है। सप्त धातुओं की असमानता उत्पन्न करते है। शरीर में कुपोषण उत्पन्न करते है। सभी विजातीय द्रव्य को बढ़ाते है।

विजातीय द्रव्यों द्वारा शरीर में रोगों की उत्पत्ति होती है। इन उत्पन्न हुये रोगों से भी विजातीय द्रव्य दो प्रकार से सभी रोगों में मूल रूप से रोगोत्पत्ति करते है।

1) **तीव्र रोग :–** वे सभी रोग जो तेजी से उत्पन्न होते है। तीव्र रोग कहलाते है। ये अधिकतर संक्रामक रोग होते है। जैसे :– प्रतिश्याम (जुकाम), हैजा (उल्टी, दस्त) आदि तीव्र रोग की श्रेणी में आते है। यह सामयिक, अल्पकालिक होते है। जल्दी ही ठीक भी हो जाते है। तीव्र रोगों में विजातीय द्रव्य शरीर से बाहर निकल

जाते है। और शरीर स्वस्थ हो जाता है। इसीलिए तीव्र रोगों को शत्रु नहीं अपितु चिकित्सा की दृष्टि से मित्र माना जाता है।

2) **जीर्ण रोग :–** तीव्र रोग के विपरीत जो रोग शरीर में दबकर पड़े रहते है। धीरे–धीरे अनिष्ट एवं विनाश की स्थित बनाते हुये, लम्बे समय तक शरीर को जर्जर/पीड़ित बनाये रखते है, जीर्ण रोग कहलाते है। असाध्य श्रेणी के ये रोग कठिनता से लेकिन ठीक अवश्य होते है।

जीर्ण रोग एवं तीव्र रोग दोनों के मूल रूप से विजातीय द्रव्य ही कारण है।

शारीरिक मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य

शारीरिक स्वास्थ्य :– शरीर का स्वास्थ्य पंचमहाभूतों पर निर्भर करता है। जब ये शरीर में सामान्य अनुपात में होते है तो शरीर स्वस्थ होता है। इन पंच महाभूतों का संतुलन बिगड़ने से शरीर के स्वास्थ्य का संतुलन बिगड़ने लगता है।

शारीरिक रोगों का मूल कारण :– शरीर में जो भोजन पोषण के लिए लिया जाता है। सर्वप्रथम उसका पाचन होता है, तत्पश्चात इस पचित भोजन की रक्त में अवशोषण होता हे। अवशोषित पचित भोजन का इसके पश्चात शरीर के विभिन्न कोषों एवं अंगों में स्वागीकरण (Assimitation) होता है। इस बीच इस क्रिया में कहीं भी रूकावट आती है तो वह भोजन अपशिष्ट पदार्थ के रूप में एकत्र होता है। ये विजातीय द्रव्य यदि समय से शरीर से बाहर नहीं निकलते तो रोग के रूप में एवं लक्षणों के रूप में शरीर पर प्रकट होते है।

मानसिक स्वास्थ्य :–

प्राचीन समय में जहां व्यक्ति शरीर को ही महत्व देता था परन्तु आज व्यक्ति शरीर को छोड़कर केवल मन पर ही भार डाल रहा है। अधिक समय कम्प्यूटर, टी.वी., इंटरनेट, मोबाईल पर ही समय बीतता है। मन को न जानने पर व्यक्ति मानसिक रोगों से ग्रस्त होता जा रहा है।

मनोविज्ञान मन के तीन स्तर की बात करता है।

1) **चेतन स्तर :–** जब भी व्यक्ति कार्य कर रहा होता है जैसे सोचना, बोलना, लिखना, अनुभवकरण, याद करना, व्यवहार करना है। अतः लोगों के केवल चेतन मन का ही ज्ञान होता है।

2) **अवचेतन मन :–** इसमें पुरानी छिपी हुई यादे, आदते अच्छी या बुरी जैसेः– टाईपिंग, कारमोटर चलाना, गाली देना आदि।

3) **अचेतन मन :–** इसमें बचपन, पुराने जन्मों की यादे, भय, रोकी गई इच्छाएं संचित रहती है।

मनोरोग के कारण :–

1) सपने अधिक देखना, उनका पूरा न हो पाना।

2) अपने परिवार एवं दोस्तों से लगाव होना एवं मृत्यु होने पर शोक होना।

3) बच्चों में शारीरिक एवं मानसिक शोषण होना।

4) दूसरों की गलतियाँ निकालना व फालतू गपशप के कारण।

5) आर्थिक समस्याओं के कारण लगातार परेशान रहना।

6) शारीरिक रोगों में लगातार फंसे रहना।

8) छोटी–छोटी बातों में घबरा जाना एवं भय का वातावरण बनाना।

9) नींद न आना, दु:खी जीवन व्यतीत करना।

उपचार :–

1) 6 से 7 घण्टे की आरामदायक नींद, दिन में 45 मिनट का आराम श्वासन में जरूरी है।

2) अपने शुभचिंतकों के साथ अपने तनावों को दूर करने की बात करना एवं सत्संग करना।

3) अपनी सामर्थ्य की जानकारी होना एवं कर्तव्यों को पूरा करना।

4) काम के अतिरिक्त, व्यायाम, खेल, चित्रकारी, बागवानी आदि मनोरंजक कार्यो के प्रति समय एवं लगाव होना।

आध्यात्मिक स्वास्थ्य :–

इन्द्रियों एवं मन का विकास इच्छाओं आवश्यकताओं, महत्वाकांक्षाओं, अहंकार, बुद्धि एवं विचार के साथ–साथ होता है। परन्तु एक ऐसा तत्व है। इस शरीर व मन के साथ जो सजन्मा है, अमृत है, अपरिवर्तनशील हैं। यह अदृश्य है। जिसे आत्मा कहते है। चित की शान्त अवस्था जिसमें सुख एवं आनन्द की अनुभूति रहती है जो सत्य है, आध्यात्मिक स्वास्थ्य की अनुभूति कराती है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य के प्राप्त होने पर मानसिक स्वास्थ्य की स्वतः ही प्राप्ति हो जाती है। इस अध्यात्मिक स्वास्थ्य को प्राप्त करने में प्राकृतिक चिकित्सा में कुछ उपाय निम्न प्रकार है।

1) **रामनाम की औषधि :–** रोगी को चिकित्सा लेते समय मन को शान्त रखे इसके लिए रामनाम कर जाप किया जाना चाहिए। वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा भी यह सिद्ध हो चुका है कि शब्द की शक्ति अनन्त है। बार–बार एक नाम को प्रेम व श्रद्धा से अपने से शरीर व मन स्वस्थ होता है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।

2) **श्वास पर ध्यान :–** हमारे शरीर की घटनाओं में सांस लेने व छोड़ने की सामान्य प्रक्रिया पर ध्यान लगाने से आध्यात्मिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है। वास्तव में सांस का सम्बन्ध सीधा हमारे विचारों से है। प्रत्येक विचार के साथ श्वास की स्थिति बदल जाती है। क्रोध की अवस्था में श्वास की गति तीव्र हो जाती हैं प्रेम की अवस्था में धीमी हो जाती है। श्वास पर ध्यान लगाने से विचारों पर नियंत्रण सम्भव है। श्वास में आने की प्रक्रिया पर ध्यान रखने से श्वासों पर ध्यान लगाना प्रारम्भ हो जाता है। फलस्वरूप अन्तः स्त्रावी ग्रन्थियाँ

एवं तंत्रिका तंत्रिका तंत्र की क्रियाओं पर स्वाभाविक स्वास्थ्य वर्धक नियंत्रण होने लगता है। आध्यात्मिक स्वास्थय की प्राप्ति होती है।

3) **प्राणायाम :–** विभिन्न प्रकार के प्राणायामों का दैनिक अभ्यास प्राण शक्ति को बढ़ाता है। यह प्राण शक्ति हमारे शरीर मन व आत्मा में संतुलन स्थापित करती है। प्राणायाम के दौरान विभिन्न मुद्राओं का अभ्यास भी किया जा सकता है। जीने के लिए सर्वप्रथम आवश्यक वायु ही है।

4) **धारणा :–** कार्य में इतना तल्लीन होना कि अन्य विषयों से ध्यान हटकर उस कार्य में आनन्द आने लगे उसे धारणा करते है। काम के समय काम व खेल के समय खेल में ही ध्यान देना चाहिए। ध्यान का मार्ग एकाग्रता से होकर जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा उपचार लेते समय पंचमहाभूतों का शरीर से स्पर्श अनुभव एवं शरीर में हुये परिवर्तन को अनुभव करने से धारणा बनती एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य का आनन्द प्राप्त होने लगता है।

5) **तपयोग :–** प्राकृतिक चिकित्सा उपचार को तप एवं त्याग के साथ अपनाकर जीवन के प्रति भौतिक सुख का शमन एवं आध्यात्मिक आनन्द का वर्धन तपयोग का साधक है। इन्द्रियों पर नियंत्रण से मन की गति पर अंकुश लगता है। तप एवं त्याग का अभ्यास भौतिक सुखों को आध्यात्मिक आनन्द में बदल देता है।

6) **जपयोग :–** गायत्री साधना, प्रणव का उच्चारण, महामृत्युजंय एवं अन्य ईष्ट सम्बन्धित मंत्र के जपने से भी आध्यात्मिक स्वास्थ्य का लाभ मिलता है।

7) **स्वाध्याय :–** वेद, गीता, उपनिषद, ब्रह्मसूत्र, दर्शन शास्त्र, पतंजलि योग सूत्र एवं प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धित पुस्तके ज्ञान योग में लाभकारी है। इस प्रकार की पुस्तकें ज्ञान योग द्वारा मन को शान्ति प्रदान कर आध्यात्मिक स्वास्थ्य का आनन्द प्रदान करता है।

8) **ईश्वर प्राणिधान :–** समस्त चर–अचर में एक ही शक्ति का वास है। जिसे भगवान कहते है। इस मिथ्या स्वप्न जगत में एक ही बात सत्य है कि राम नाम सत्य है। वह स्वास्थ्य जो अपने आप में स्थित हो गया है। जिसने सबकों पा लिया है। वही स्वास्थ्य है। वहीं आध्यात्मिक स्वास्थ्य है।

आधुनिक मनोविज्ञान में मनोरोगों के कारण:–आधुनिक मनोविज्ञान मनोरोगों के कारणों पर प्रमुखतया तीन आधार पर विचार करता है।

(1) जैविक कारण (2)मनोसामाजिक कारण (3) सामाजिक–सांस्कृतिक कारण।

(1) जैविक कारण:– जैविक कारण मं आनुंवशिक दोष, शरीर गठनात्मक कारक, जैव रसायन कारक, मस्तिष्कीय दुष्क्रिया तथा शारीरिक तनाव कारक प्रमुख हैं इन सभी कारकों का स्वरूप जैविक इसलिए माना गया है क्योंकि इसका सम्बन्ध व्यक्ति के जन्म के पहले या जन्म से ही मौजूद कारकों से होता है।

2. मनोसामाजिक कारण:– मनोसामाजिक कारणों की भूमिका असामान्य व्यवहार या मानसिक रोगों में

काफी अधिक पायी गयी है। इन कारणों में संज्ञानात्मक कारक, आरंभिक वचन या आघात, अपर्याप्त जनकता, रोगात्मक परिवारिक संरचना तथा कुसमायोजी साथी-संगी का सम्बन्ध को महत्वपूर्ण माना गया ।

1. दोषपूर्ण अनुशासनः- माता-पिता द्वारा बच्चे के किसी व्यवहार को दंड मिलता है तो उसी व्यवहार में कभी कभी उसे पुरस्कार दिया जाता है। ऐसी स्थिति में बच्चा यह नहीं सीख पाता है कि उपयुक्त व्यवहार क्या है। इस कारण बच्चों में आक्रामकता, अदयालुता, दूसरों में विश्वास की कमी,डर, माता-पिता के प्रति घृणा एवं आत्म दण्ड का दोष आदि मनोरोग विकसित होने लगते हैं।

2. अपर्याप्त एवं अतार्किक संचारः- जब बच्चों के प्रश्नों का उतर माता-पिता द्वारा अपर्याप्त या गलत होता है जिसे बच्चा समझ नहीं पाता या फिर उसे डांट कर चुप करा दिया जाता है जिसके कारण बच्चों में कुसमायोजी व्यवहार एवं नकारात्मक प्रवृति जैसे मनोविकार उत्पन्न होते देखें गए हैं।

3. बेमेल परिवारः- जिसमें माता-पिता में से कोई एक या दोनों को ही एक-दूसरें से सतुंष्टि नही रह जाती है। उनमें अक्सर वाद-विवाद होते हैं। ऐसे परिवार के वयस्क एवं बच्चों पर समाज विरोधी प्रवृतियों का असर पड़ता है वे मनोरोगी हो जाते हैं।

4. विक्षुब्ध परिवारः- जिसमें एक या दोनों इतने सनकी तथा असामान्य ढ़ंग से व्यवहार करते हैं कि वे पूरे घर में सतत् सांवेगिक अशांति की स्थिति पैदा कर देते हैं। ये आपस में लड़ते-झगड़ते रहते हैं। इसके कारण बच्चों को पर्याप्त स्नेह व प्यार नहीं दे पाते।

3. सामाजिक-सांस्कृतिक कारणः- असामान्य व्यवहार की उत्पति में सामाजिक-सांस्कृतिक कारण की भी अहम भूमिका होती हैं इसमें निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर, अनुपयुक्त सामाजिक भूमिका,आर्थिक कठिनाईयां एंव बेरोजगारी, सामाजिक सम्बन्ध, सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण, वैवाहिक समस्याएं तथा यौन भूमिका को प्रधान माना गया है।

मानसिक रोगों से हानियां और उनसे शारीरिक रोगों की उत्पतिः- अमेरिका के सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक **बर्थ सोलोन** ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि सर्वागपूर्ण स्वास्थ्य ही मानव जीवन की साधारण और स्वाभाविक दशा है। उनका कहना है कि मृत्यु के सब विचार, रोग के सब चित्र,दमन की सभी बातें सदा के लिए दिल से निकाल देनी चाहिए क्योंकि ये धारणाएं हमारी उत्पादक शक्ति को नष्ट करके हमें बीमार कर देते हैं। मानसिक रोग या मनोविकार शारीरिक स्नायु मार्ग को अवरूद्ध करके ततुंओं को नष्ट करके जीवनीशक्ति की क्रिया में बाधक होकर तथा मल विसर्जन में रूकावटें खड़ी करके शारीरिक रोग को भीषण बना देते हैं। क्रोध, अधैर्य एवं चिडचिड़ापन से ज्वर बढ़ता है।

भयः- यह एक मानसिक रोग है जिसका आघात कभी-कभी भयंकर होता है। इसके प्रभाव से शरीर विष से भर जाता है और हृदय गति अति तीव्र हो जाती है। आँख की रोशनी कम हो जाती है,भूख खत्म हो जाती हैं, शरीर

पीला पड़ने लगता हैं। शारीरिक व्याधियाँ घेर लेती हैं।

क्रोधः– इस रोग से भी रोगी के शरीर में तीव्र विष की उत्पति होती है जो खून को जला डालता है। क्रोधावस्था में अंत: स्त्रावी ग्रंथि से एड्रिनेलिन नामक एक रासायनिक द्रव्य खून में मिल जाता है जिससे पाचन क्रिया मंद पड़ जाती है। वैज्ञानिकों ने क्रोधित मन: स्थिति का अध्ययन करने पर प्राप्त निष्कर्ष को व्यक्त करते हुए कहा कि प्रंदह मिनट के क्रोध से शरीर की जितनी शक्ति नष्ट होती है उससे व्यक्ति नौ घंटे तक कड़ी मेहनत करने में समर्थ हो सकता है। उसके अतिरिक्त क्रोध शरीर सौष्ठव को भी नष्ट करता है। भरी जवानी में बुढ़ापे का लक्षण, आखों के नीचे चमड़ी का काला होना, आखों में लाल रेखाओं का उद्‌भव तथा शरीर में जहाँ तहाँ नीली नसों का उभरना क्रोध के ही दुष्परिणाम है।

ईर्ष्या–द्वेषः– ईर्ष्या –द्वेष से केवल मानसिक संतुलन में ही विकृति नहीं आती वरन लकवा, अंधापन और कैंसर तक के प्रमाण मिले हैं, लगभग 56 प्रतिशत वात रोग ईर्ष्या के ही परिणाम होते हैं।

ईर्ष्या से मानसिक तंतुओं एवं स्नायु प्रणाली में सिकुड़न होने लगती है। शरीर के जोड़ –जोड़ जकड़ जाते हैं।

तनावः– अत्यधिक सोच–विचार और चिन्ता करने से उत्पन्न होने वाला मानसिक तनाव यदि लम्बे समय तक बना रहे तो व्यक्ति का परिस्थितियों के साथ समायोजन बुरी तरह प्रभावित होता है और कई बार तो व्यक्ति का सम्बन्ध ही वास्तविक दुनिया से भी टूट जाता है।

कई बार तनाव के लगातार बने रहने से व्यक्ति अवसाद में चला जाता है। तनाव के अधिक समय तक बने रहने से कब्ज रहने लगती है। खाना हजम नहीं होता हैं, आखों की रोशनी कमजोर पड़ने लगती है। नशा करने की इच्छा होती है।

चिन्ताः– यह आज सबसे अधिक प्रचलित मनस्ताप है। इससे अक्रान्त व्यक्ति प्राय: एक अस्पष्ट किन्तु तीव्र दुश्चिन्ता से ग्रस्त रहता है।

रास के अनुसारः– इसकी उत्पति प्रतिबलों एवं मानसिक दवाबों को दूर करने में असफल प्रयासों के फलस्वरूप कुसमायोजन से होती है। चिन्ता की चिता में बैठा मनुष्य अपनी यातनापूर्ण मृत्यु की प्रतिक्षा करने के सिवाय और कुछ नहीं कर सकता। कहा भी गया है कि चिता मुर्दे शरीर को जलाती है लेकिन चिन्ता जीवित मनुष्य को ही जलाती रहती है।चिन्ता से क्रोध की ही भांति रक्त में रासायनिक परिवर्तन होता है। जिससे रक्त अशुद्ध होकर सूखने लगता है। जिसके परिणामस्वरूप शरीर सूखकर कांटा हो जाता है, त्वचा बदरंग हो जाती है, होंठ फीके पड़ जाते है। ऐसे रोगियों का पाचन बिगड़कर यक्ष्मा शीघ्र पकड़ता है। चिन्तित मनुष्य को नींद नही आती और जीवन भार स्वरूप लगने लगता है।

मानसिक रोग दूर करने के उपायः– मानसिक रोगों को रोकने के लिए निम्नलिखित उपाय से मदद मिल सकती है।

1. प्रेम भाव:- सबके प्रति मन में प्रेम हो, द्वेष, ईर्ष्या किसी से न हो, सभी को अपना मानकर, आत्मवत सर्वभूतेषु की भावना रखनें से मन में बहुत शान्ति मिलती है।

2. उपकार भावना:- हमें दूसरों पर उपकार करते जाना चाहिए। परन्तु यदि उन उपकारों का बदला हमें न मिले तो दु:खी कदापि नहीं होना चाहिए।

3. सम्मान का भाव:- सदा दूसरे के हको का सम्मान करना चाहिए क्योंकि हम किसी से अपने हक का सम्मान तभी करा सकते हैं, जब उसके हक का सम्मान हम स्वयं करें।

4. अनासक्ति की भावना:- हमें सांसारिक पदार्थो एवं व्यक्तियों से अधिक लगाव, मोह या अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए क्योंकि आसक्ति रखने से यदि उसकी प्राप्ति न हो तो हमें बहुत दुख एवं कष्ट होता है और हम मानसिक रोगी बन सकते हैं।

5. ईश्वर विश्वास:- संसार के सभी कार्यो को भगवद् इच्छा समझते हुए अपने को निमित मात्र समझो (भगवान में आत्मसमर्पण की भावना को अपना रक्षा कवच समझो।

6. आत्मशक्ति पर विश्वास:- अपने ऊपर विश्वास करें कि आपमें हर कार्य करने की शक्ति भरी हैं। अपने में आत्मनिर्भरता आत्मसम्मान और आत्मबल सदा भरते और अनुभव करते रहो। इससे मनोबल बढ़ेगा व मानसिक रोग दूर होगा।

7. आत्मसंतोष:- इस बात का स्मरण सदैव रखना चाहिए कि जो मानसिक दिक्कतें, अड़चनें तथा बाधायें उपस्थित होती है, वे सबके साथ हो सकती है, हमारे लिए ही नहीं होती। ऐसे विचार से आत्मसंतोष की उपलब्धि होती है।

8. मनोरंजन:- समय-समय पर मनोरंजन करते रहना चाहिए। मनोरंजन से मन स्वस्थ व हल्का-फुल्का हो जाता है।

9. प्रसन्नता:-प्रसन्नता का विशेष प्रभाव मानसिक रोगों पर पड़ता है। यदि मानसिक रोगी सदैव प्रसन्न रहे, खिन्नता व उदास रहना छोड़ दे तो उसका मानसिक रोग धीरे-धीरे ठीक होने लगता है।

10. सकारात्मक चिन्तन:- मन में सदैव सकारात्मक चितंन रखें, जैसे:- आशा, उत्साह, सुखद भविष्य, शुभ, सुन्दर, प्रेम, करूणा,उदारता, सेवा, सहायता आदि का भाव रखे।

11. यम नियम का पालन करें।

आध्यात्मिक रोग के कारण:- आध्यात्मिक रोग का सबसे बड़ा कारण अपने ऊपर और ईश्वर पर विश्वास नही होना है। भौतिकवादी एवं भोगवादी दृष्टिकोण व चितंन से नाना प्रकार के आध्यात्मिक रोग होते हैं। काम, क्रोध, लोभ,मोह व बुरी संगति व्यक्ति को कुमार्गगामी बना देता है व व्यक्ति आध्यात्मिक रोगी बन जाता है।

(1) अपने ऊपर विश्वास न होना।

(2) नास्तिक होना अर्थात् परमात्मा पर विश्वास न होना।

(3) शरीर,मन व अन्तःकरण को शुद्ध न रखना।

(4) असंतोष,अधैर्य,उद्धिग्नता व चिन्ता से ग्रसित रहना।

(5) बुरी सगंत व दुर्गुणों से सम्बन्ध रखना।

(6) कुकर्मो के प्रति रूचि रखना और ईश्वर के दण्ड के भय से न डरना।

(7) अज्ञानी और अभिमानी होना।

(8) ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध व लोभ के वशीभूत होना।

(9) अपनी प्रंशसा स्वयं अपने मुख से करना।

(10) कर्मफल एवं पुनर्जन्म में विश्वास न रखना।

(11) अनीति की राह पर चलना।

आध्यात्मिक रोगों को दूर करने के:-

1.निषिद्ध कर्मो का सर्वदा त्यागः- चोरी,व्यभिचार, झूठ, कपट, छल, जबरदस्ती, हिंसा, अभक्ष्य भोजन और प्रमाद आदि का त्याग करना।

2. काम्य कर्मो का त्यागः- स्त्री,पुत्र,धन आदि व किसी कामना की प्राप्ति के उद्देश्य से किये जाने वाले यज्ञ,दान,तप और उपासना आदि सकाम कर्मो को अपने स्वार्थ के लिए न करना, यह दूसरी श्रेणी का त्याग है।

3. तृष्णा का सर्वदा त्यागः- मान बढ़ाई, प्रतिष्ठा एवं स्त्री,पुत्र और धन आदि जो कुछ भी अनित्य पदार्थ प्रारबध के अनुसार प्राप्त हुए हो, उनके बढ़ने की इच्छा को भगवद्प्राप्ति में बाधक समझकर उसका त्याग करना।

4. अष्टांगिक मार्ग पर चलना:- महर्षि पतंजलि ने आत्मकल्याण व मोक्ष प्राप्ति के आठ साधन बताए हैं। जिसे अष्टांग योग कहा जाता है। उनका पालन करना।

5. आत्म सुधार व आत्म विकास में निरत रहना:- अपने अंदर स्थित दोष-दुर्गुणों को देखना अर्थात् आत्म चिन्तन करना उन कमियों को दूर कर अर्थात् आत्म सुधार करना तथा अंतकरण में सद्गुणों को धारण करना, आत्मनीयता का विस्तार करना अर्थात् आत्म विकास करना।

निदान एवं निदान की विधियाँ

1. मुखाकृति निदान (Facial Diagnosis)

2. नाड़ी गति से रोग परीक्षण (Pulse rate examination)

3. जिह्वा परीक्षण (Tounge Examination)

4. दांत व मसूढ़ों का परीक्षण (Teeths and Gums Examination)

5. होठ परीक्षण (Lips Examination)

6. आँख परीक्षण (Eye Examination)

7. कनीनिका निदान (Rris Examination)

8.मूत्र परीक्षण (Urine Examination)

9. रक्तभार परीक्षण (B.P. Examination)

10. वक्ष परीक्षण (Chest Examination)

1. मुखाकृति निदानः– मुखाकृति विज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जिसके माध्यम से शरीर की रोगावस्था अथवा अस्वस्थता का निदान किया जाता है। बाह्य अंगों तथा उनकी आकृति को देखकर शरीर तंत्र की कार्यात्मकता का ज्ञान होता है। कुने का विचार है कि शरीर से संबंधित सभी प्रकार की मनोवैज्ञानिक, सांवेगिक तथा शारीरिक प्रतिक्रियाएं सबसे पहले चेहरे पर परिलक्षित होती है। इस प्रकार इस निदान की विधि द्वारा शरीर रचना, गति, भाव तथा सांवेगिक स्थिति का अध्ययन संभव होता है। कुने का मानना है कि रोग शरीर के आकार को बदल देते हैं, उदाहरण के लिए मोटापे की दशा में पेट बढ़ जाता है, हाथ पावों पर मोटी तथा ढीली त्वचा होकर लटकने लगती है, जब वसा की कमी होती है तो शरीर दुबला-पतला होकर लम्बा दिखायी देता है। गठिया होने पर गांठे पड़ जाती हैं।

मुखाकृति विज्ञान के आधारः–

1. रोगों की उत्पति शरीर में मल संचय के कारण होती है।

2. मल पहले पेडू पर फिर उसके बाद चेहरे पर तथा गर्दन पर संचित होता है।

3. प्रत्येक रोग की शुरूआत बुखार से होती है तथा बिना रोग के बुखार नहीं आता है।

चेहरे की दशा तथा रोग की पहचानः– 1. कोमल चेहरा, झालर वाली पलकें,धंसी हुई आँखें, टी.बी. होने का संकेत करती है।

2. चेहरे पर मोम के रंग का पीलापन आना गुर्दे या वृक्क की बीमारी का सूचक है।

3. मुँह से बार-बार सांस लेना, गलसुपे की निशानी है।

4. रोगी का चेहरा सुस्त हो जाना,कब्ज तथा बुखार का होना घोतक है।

5. रोगी के माथे पर झुरियां पड़ना तीव्र बाह्य दर्द का घोतक है।

6. रोगी का चेहरा पीला हो जाना पीलिया रोग का सूचक है।

7. रोगी का फीका चेहरा होना टी.बी. प्रदर्शित करता है।

8. मसूड़ो का रंग नीलापन लिये होता है तो यह हृदय रोग का सूचक है।

9. चेहरे का लाल तथा धब्बों वाला होना खसरे का सूचक है।

नाड़ी से रोग परीक्षाः-

रक्त संचार के स्वरूप जो धड़कन होती है, उसे नाड़ी द्वारा अंगुलियों से ही जाना जा सकता है। धमनी द्वारा श्वत संचार होता है। अतः उसकी परीक्षा की जाती है। तीन प्रकार की नाड़ियां तीन स्थितियों वात, पित तथा कफ को दर्शाती है। प्रारम्भ में वात की नाड़ी, मध्य में पित्त की नाड़ी तथा अंत में कफ की नाड़ी होती है। जब वात अधिक होता है तो तर्जनी अंगुली के नीचे नाड़ी का स्फुरण होता है, पित्त की प्रबलता में मध्यमा अंगुली के नीचे नाड़ी धड़कती है तथा कफ की प्रबलता में अनामिका के नीचे स्फुरण होता है। यदि वात, पित्त की अधिकता हो तो तर्जनी और मध्यम के बीच स्फुरन होता है। प्रोठावस्था में एक स्वस्थ व्यक्ति का स्पंदन प्रति मिनट 70-75 बार होता है। शारीरिक गठन, खान-पान, रहन-सहन, स्त्री-पुरूष आदि के अनुसार भी नाड़ी की गति घट बढ़ सकती है।

जिह्वा परीक्षणः-

1. तीव्र ज्वर, लम्बे उपवास तथा जल की कमी होने पर जीभ पर मैल की तह जम जाती है।

2. रक्त की कमी होने पर जीभ का रंग फीका हो जाता है, जीभ की सतह मुलायम तथा समतल हो जाती है।

3. स्नायु रोगी में जीभ संज्ञा हीन हो जाती है।

4. पीलिया में रोगी की जीभ कुछ पीली हो जाती है।

5. हृदय के रोगों में जीभ जरा सी बढ़ जाती है। दांत के निशान पड़े दिखायी देते हैं व जीभ का रंग कुछ नीला हो जाता है।

6. शोध के रंग में जीभ अस्वाभाविक रूप से लाल हो जाती है।

7. पाचन शक्ति के विकारों में जीभ लाल हो जाती है तथा उस पर छोटे-छोटे दाने पड़ जाते है।

8. अजीर्ण रोगों में जीभ मोटी हो जाती है व जीभ पर सफेदी दिखायी देती है।

9. आमाश्य के रोगों में जीभ फटी हुई होती है।

10. शरीर में जल की कमी होने पर जीभ सूखी ओर रूखी हो जाती है।

दाँत एवं मसूढ़ों का परीक्षणः-

1. पायरिया में दांतों की जड़ों एवं मसूढ़ों से पीप निकलने लगता है।

2. पाण्डुरोग में रोगी के मसूढ़े भी पीले पड़ जाते हैं।

3. शरीर में कैल्शियम की कमी होने से दाँत आसानी से टूटने लगते हैं।

4. पेट में कीड़े होने पर रोगी अपने दाँत पीसता है।

5. पेट सम्बन्धी रोगों में दाँतों पर हरा या पीला मैल जम जाता है।

6. बुखार में भी दाँतों पर काला या भूरा मैल जम जाता है।

होठ परीक्षण (Lips Examination)

1. हृदय रोग में रोगी के होंठ काले या नीले हो जाते हैं।

2. दिल की कमजोरी में होंठ नीले हो जाते हैं।

3. निमोनिया तथा मलेरिया में होंठो पर दाने निकल आते हैं।

4. पाचन विकारों में होंठ हर समय सूखे रहते है व रक्त की कमी में हल्के पीलें और सफेद हो जाते हैं।

आँख परीक्षण (Eye Examination)

1. हैजा,क्षय, कमजोरी, अतिसार, रक्तस्त्राव में रोगी की आखें धँसी होती है।

2. उच्च रक्त चाप में नेत्रों से रक्तस्त्राव होने लगता है ।

3. वात रोगों में नेत्र सूखें हो जाते हैं।

4. पित्त रोगों में आँखें पीली दिखाई देती है।

5. रक्त की कमी, दिल का अधिक धड़कना, सिर चकराना आदि अवस्था में आंखों के सामने अंध
ेरा जा जाता है।

6. नजला, जुकाम, पागलपन और तीव्रज्वर में आंखें लाल हो जाती है।

7. हृदय विकार तथा ऑक्सीजन की कमी में आंखें नीली हो जाती है।

कनीनिका निदान (Iris Examination):-

आँखों के सफेद हिस्से में काली पुतली दिखाई देती है। उस काली पुतली में एक बिन्दु होता है। बिन्दु को छोड़कर बिन्दु के चारों ओर काले भाग को **कनीनिका** कहते हैं। आँख का वर्णन एक गोले अथवा गोलब के रूप में किया जाता है, परन्तु वास्तव में यह अण्ड़ाकार होता है, इसका व्यास 2.5 से.मी. होता है।

कनीनिका में रोग के लक्षणः- डॉ. लिण्ड़लकार ने स्पष्ट किया है कि शरीर में जब किसी रोग के लक्षण जन्म लेते है, तो उसके कुछ चिन्ह कनीनिका के निश्चित स्थान पर उत्पन्न होने लगते हैं। कनीनिका में प्रत्येक अंग तथा अवयव का स्थान निश्चित है, वहां पर श्वेत रंग की गहरी रेखाएँ दिखायी देने लगती हैं। यदि इसी अवस्था पर प्राकृतिक चिकित्सा विधि से शरीर में संचित विजातीय तत्व को बाहर निकाल दिया जाता है, तो रोग गम्भीर नहीं बनने पाता है।

जैसे-जैसे रोग की दशा बदलती जाती है,वैसे-वैसे कनीनिका चिन्हों की उभरी हुई दशा भी बदलती जाती है। श्वेत रेखाओं के साथ काली रेखाएं दिखने लगें तो इसका तात्पर्य होता है कि रोग की जटिलता बढ़ रही है।

मूत्र परीक्षण (Urine Examination):-

1. मात्राः-साधारण स्वस्थ व्यकि त1500 सी.सी. मूत्र का प्रतिदिन परित्याग करता है। शीत तथा वर्षाऋतु में यह मात्रा बढ़ जाती है तथा ग्रीष्म ऋतु में पसीने के अधिक निकलने के कारण मूत्र की मात्रा कम हो जाती हैं। मधुमेह तथा वृक्क शोध में बढ़ जाती है।

2. रंगः- प्राकृत अवस्था में मूत्र हल्के पीले रंग का होता है। पीलिया में यह मूत्र पीला हो जाता है। फाइलेरिया में मूत्र में काइल आने पर मूत्र दूध के समान सफेद हो सकता है। रक्त आने पर मूत्र लाल तथा हीमोग्लोबिन आने पर काला हो जाता है।

3. पारदर्शिताः- प्राकृत अवस्था में मूत्र जल के समान निर्मल होता है। मूत्र में फास्फेट तथा बैक्टीरिया आदि रहने पर मूत्र गंबला हो जाता है।

4. गंधः- प्राकृत मूत्र की गंध एक विशिष्ट गंध होती है। **एसीटोन** आने पर मूत्र की गंध सड़े फल के समान होती है।

मूत्र के सामान्य तत्वः- मूत्र में 9.60 भाग जल और .40 भाग ठोस पदार्थ होता है।ठोस पदार्थों में यूरिया,यूरिक एसिड़, सोडियम और क्लोराइड ही अधिक मात्रा में होते है।

सामान्यतः यूरिया 2-3 ग्राम प्रति लीटर होता है।

सामान्यतः यूरिक एसिड 0.7 ग्राम प्रति लीटर होता है।

मूत्र का आकार प्रकार तथा रोगः-

1. धूमिल रंग का मूत्र होना रक्त की उपस्थिति का सूचक है।
2. लाल रंग का मूत्र होना अम्लता (Acidity) की अधिकता बताता है।
3. गहरे पीले रंग का मूत्र होना पित्त की मौजूदगी का सूचक है।
4. गंदा मूत्र होना श्लेष्मा या पीक का सूचक है।
5. फीका या सफेद मूत्र होना जल की अधिकता, यूरिया या चीनी की अधिकता का सूचक है।
6. रोगी के मूत्र करने के बाद भी कुछ देर तक झाग रहना श्वेत सार (Albumin)या पित्त उत्पादन का सूचक है।
7. मूत्र में अधिक अम्ल होना पथरी की उपस्थिति का सूचक है।

रक्तचाप तथा रोगः- जब हृदय रक्त को धमनियों में धकेलता है, तो धमनियों की दीवारों प एक प्रकार का दबाव पड़ता है। इसी को रक्तचाप या रक्तभार कहते हैं।

जब रक्तचाप बढ़ जाता है तो उसे उच्च रक्तचाप (High Blood Pressure) व हाइपरटेशन कहते है।

जब रक्तचाप कम हो जाता है तो उसे निम्न रक्तचाप (Low Blood Pressure) कहते है।

रक्तचाप जानने की सरल विधिः- यदि 100 की संख्या में आयु की आधी संख्या जोड़ दी जाय, तो प्रंकुचन रक्त चाप मालूम हो जाता है। उदाहरण के लिए यदि आयु 50 वर्ष की है, तो प्रकुचन रक्तचाप (Systolic)(100+50/2= 125 mm)

रक्तचाप दो प्रकार का होता हैः-

1. प्रकुंचन रक्तचाप (Systolic Blood Pressure)

2. अनुशिथिलन रक्तभार (Diostolic Blood Pressure)

प्राकृतिक दशाओं में रक्तचापः-

1. प्रातः काल की अपेक्षा सायंकाल को प्रकुंचन रक्तचाप बढ़ जाता है।

2. खड़े होने पर बैठने की अपेक्षा दो मिलीमीटर प्रकुंचन बढ़ जाता है तथा अनुशिथिलन कम हो जाता है।

3. क्रोध,चिन्ता तथा घबराहट में प्रकुंचन रक्तचाप बढ़ जाता है।

4. खाना खाते समय और अधिक पानी पीने से भी प्रकुंचन रक्तभार अधिक हो जाता है।

5. व्यायाम से प्रकुंचन भार बढ़ता है।

6. सोने से प्रकुंचन रक्तचाप कम हो जाता है।

वक्ष परीक्षा (Chest Examination):-

(1) देखकर (Inspection)

(2) स्पर्शन (Palpation)

(3) परिमापन (Mensuation)

(4) हाथ से ठोक कर (Percussion)

(5) सुनकर (Ascultation)

विभिन्न रोगों में वक्ष की ध्वनिः-

(1) दमा में सीटी देनी की ध्वनि जैसी आवाज आती है।

(2) प्लूरिसी में रगड़ (Friction) सी आवाज आती है।

(3) टी० बी० रोग में धातु पात्र बजने की तरह ध्वनि होती है।

(4) न्यूमोनिया में कागज फाड़ने की जैसी आवाज आती है।

(5) ब्रोन्काइरिस में मक्खी की भनभनाहट या घबराहट की आवाज आती है।

जल चिकित्सा, जल के प्रकार, प्रयोग, पटटियां

जल चिकित्सा में प्रयुक्त विविध पट्टियाँ –

प्राकृतिक चिकित्सा में जल चिकित्सा के लिए रोगों के निवारणार्थ जो उपचार पट्टी या लपेट से किया जाता है वह बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। सामान्य भाषा में जल पट्टी और पनकपड़ा नाम से भी जाना जाता है।

प्रयोग की जाने वाली पट्टी :–

जल पट्टी के लिए जो पट्टी प्रयोग की जाती है वह सूती कपड़े की बनी होती है यदि पट्टी खादी की हो तो ज्यादा लाभ होता है। व्यक्ति को ये भी ध्यान रखना चाहिये कि प्रयोग की जाने वाली पट्टी सफेद कपड़े की हो ताकि उसे साफ रखा जा सकें।

प्रयोग किया जाने वाला जल :–

जल चिकित्सा में जल पट्टी के लिए प्रयोग किया जाने वाला जल ताजा होना चाहिये। वर्षा का जल भी इसके लिए उपयुक्त होता है। पट्टी दो प्रकार की होती है।

(1) ठण्डी जल पट्टी (2) गर्म जल पट्टी

1) ठण्डी जल पट्टी :–

इसमें सूती या खादी की पट्टी को पानी में लपेटा जाता है और खुला रखा जाता है। लगाने के 2–5 मिनट बाद पट्टी स्वतः गर्म हो जाती है तो उसे बदलकर दूसरी ठण्डी जल पट्टी को लगाया जाता है। या फिर उसी पट्टी पर ठण्डा जल डालकर उसे ठण्डा कर दिया जाता है। ठण्डी जल पट्टी के प्रयोग द्वारा पीड़ा, दर्द, जलन, चोट तथा सूजन के लिए रामबाण औषधि के रूप में कार्य करती है।

व्यक्ति को तेज दर्द होने पर तेज ठण्डा जल प्रयोग करने से लाभ पहुँचता है। यदि ऐसा करने पर भी लाभ नहीं पहुँचता है तो ऐसी स्थिति में पट्टी को खोलकर उस समूचे अंग पर दूर तक पट्टी लगानी चाहिये और जब पट्टी गरम हो जाये तो उसे पुनः ठण्डे पानी द्वारा ठण्डा कर देना चाहिए। ऐसा लगभग आधे घण्टे में करना चाहिए।

उपरोक्त समस्त तरह से उपचार करने के बाद भी यदि दर्द में आराम नहीं मिलता है तो ठण्डे और गरम जल को एक के बाद एक प्रयोग करते हुये क्षतिग्रस्त अंग के ऊपर डालना चाहिये।

2) गर्म जल पट्टी :–

सामान्यतः प्रारम्भिक पाठक को गर्म जल प्रयोग होने के कारण इसे गर्म जल पट्टी कहते है परन्तु ऐसा नहीं है। ठंडी जल पट्टी लगाने के बाद उसके ऊपर जब सूखे फलार्टेन या ऊनी कपड़े

की एक दूसरी पट्टी में ऊनी कपड़े आदि की सूखी पट्टी के प्रयोग से नीचे की ठण्डी जल पट्टी थोड़ी देर में गरम हो जाती है। गर्म जल की पट्टी में ठण्डे पानी की पट्टी को निचोड़कर प्रयोग किया और ऊपर से प्रयोग किए जाने वाले ऊनी कपड़े की 2–3 तह इसी प्रकार लगाई जाती है कि गीली पट्टी से सूखी पट्टी 1–1 अंगुल चारों तरफ आवश्यकतानुसार कभी–2 खड का भी प्रयोग किया जा सकता है। रोगी को तीन से छः घंटे तक गर्म पट्टी बांधी जा सकती है। उसके बाद उसे बदल दिया जाता है।

उपरोक्त वर्णित ठण्डी जल पट्टी एवं गरम जल पट्टी शरीर के भीतर उत्पन्न हुई गर्मी को शान्त करने के बहुत लाभदायक होती है। गर्मी से उत्पन्न अवरोध जो शरीर में विकृति उत्पन्न करने है, उन्हें समाप्त करती है।

पट्टी के प्रकार :–

सर्वांग गीली चादर की पट्टी –

सर्वांग अर्थात् जब पूरे शरीर की गरम लपेट ली जाती है तो उसे सर्वांग गीली चादर की लपेट कहते है। चुहों ने इस विधि का परीक्षण करके शुतलेर नामक वैज्ञानिक ने बताया कि गीली चादर की ठंडक प्रतिक्रिया ज्योहिं चूहों पर आरम्भ हुई उनके मस्तिष्क की वे रक्त नलिकाएँ जो पहले फैली हुई थी वे सिकुड़ने लगी और थोड़ी ही देर में सारे मस्तिष्क में सिकुड़न पड़ गई, जैसा कि स्वाभाविक निद्रावस्था में होता है। फलतः गीली चादर द्वारा थकान व मानसिक विकृति दूर होती है।

सर्वांग गीली चादर की लपेट विधि –

सर्वप्रथम एक व्यक्ति बराबर 6 फुट लम्बी और 2 फुट चौड़ी टेबल पर एक पतला रूई का तौलिया रखकर उस पर एक सूती चादर बिछाते है। जिसकी चौड़ाई 3 फुट एवं लम्बाई 6 फुट होगी। इसके बाद 2–3 कम्बलों को चादर के ऊपर रखते है फिर कम्बल की चौड़ाई चादर से ज्यादा चौड़ी होने के कारण वे 2–2 फुट लटकते रहते है। कम्बल को तकिये की तरफ की चादर के दो चादर के दो इंच नीचे की तरफ रखकर बिछायेंगे। अब एक 6 फुट लम्बी सूती चादर को ठंडे पानी में भिगोकर और निचोड़कर उसे कम्बल के ऊपर बिछा देते है। इसके बाद रोगी को लिटाते हुए उसके दोनों हाथों को बाहर की तरफ रखते हुए चादर को दाहिनी तरफ से रोगी की छाती, पेट और पूरे बगल, पैर में चिपका देते है। फिर इसी प्रकार से बायीं तरफ से भी करते है। ऐसा करने से शरीर में वायु का सीधा स्पर्श हो पाता है।

रोगी के पूरे शरीर में चादर लपेट देने के बाद रोगी के सिर को ठंड़े पानी के भीगे एक तौलिए से ढ़क देते है। जिसमें बीच–बीच में जब वह थोड़ा गरम सा लगे तो पुनः ठंडे पानी में भीगाकर उसे ठंडा कर देते है।

सर्वांग गीली चादर की पट्टी लेने से पूर्व तैयारी :–

1) रोगी के सिर, चेहरा, गले वाले भाग को पानी से अच्छी तरह धो लेते है।
2) साथ ही एक गिलास गरम पानी में 8–10 बूंदे नीबू का रस डालकर रोगी को पिलाते है।
3) यदि रोगी के शरीर से अधिक पसीना निकालना हो तो हर 10 मिनट के बाद रोगी को आधा गिलास पानी पिलाते है।

सर्वांग गीली पट्टी के लाभ –

1) यह शरीर से विजातीय पदार्थ को बाहर निकालती है।
2) इससे जीवनी शक्ति बढ़ती है।
3) निमोनिया के रोगियों के लिए ये विशेष रूप से लाभदायक होती है।
4) हृदय गति रूकने की बीमारी के लाभ।
5) तेज बुखार, जलन, चर्मरोग, अनिद्रा, कब्ज, जुकाम, दमा में लाभ होता है।

पट्टी में ली जाने वाली सावधानियां –

1) सर्वांग गीली चादर की लपेट से पूर्व रोगी के शरीर को गर्म कर देना चाहिए।
2) बच्चों को बूढ़ों को तथा कमजोर व्यक्तियों के शरीर को गरम करके तथा सिर में गीला तौलिया रखकर कुछ देर टहलाकर या फिर सूखी मालिश करके ही गीली चादर की लपेट देनी चाहिए।
3) अस्थमा के रोगी की छाती में गीली पट्टी रखने के बाद एक गरम ऊनी कपड़ा उसकी छाती के ऊपर रख देना चाहिए।
4) रोगी की जीवनी शक्ति के अनुरूप पट्टी की लपेट देनी चाहिए। तेज बुखार में ठण्डी पट्टी ज्यादा और गरम पट्टी कम तथा कमजोर रोगी के उपचार में ऊनी पट्टी ज्यादा और ठण्डी पट्टी कम रखते है।

सिर की गीली पट्टी :–

सूती पट्टी को तखते और ठण्डे पानी में भीगाकर फिर निचोड़ देते है। इसके बाद उसे गर्दन के पीछे काले भाग से कानों की तरफ लाते हुए आंखों और माथे को पूरा ढ़क देते है।

लाभ :– सिर की गीली पट्टी से सिर दर्द, कान दर्द, जकड़न दूर होती हे।

गर्दन की गीली पट्टी :–

गर्दन की गीली पट्टी लगाने के लिए चार इंच लम्बाई का 32 इंच लम्बा सूती पट्टी का प्रयोग करते है।

विधि :– सूती पट्टी को ठंड़े पानी में भिगोकर निचोड़ते है और फिर गले के चारों तरफ लपेट देते है। इसके ऊपर उनी मफलर या कोई गर्म कपड़ा लपेट देते है।

लाभ :– गले की सूजन, टॉसिल, खांसी, जुकाम, सर्दी, सिर दर्द में लाभ मिलता है।

छाती की गीली पट्टी :–

सूती कपड़े को ठंडे पानी में निचोड़कर पूरी छाती पर पसलियों के नीचें तक तीन चार तह में लपेटते है। ऊनी कपड़ा लपेट देते है। यह पट्टी दो से तीन घंटे तक लपेटकर रखी जा सकती है।

लाभ :– फेफड़ों संबंधित रोग जैसे निमोनिया, तेज खांसी, टी.बी., अस्थमा आदि।

धड़ की गीली पट्टी :–

धड़ की लपेट छाती की लपेट की ही भाँति होती है लेकिन इसमें लपेट लगाने के बाद पूरे शरीर को कम्बल से लपेट दिया जाता है।

लाभ :– पेट, पेडू के क्षेत्र की सूजन, लीवर, प्लीहा और आमाशय के रोगों को दूर करने में सहायक होती है।

कमर की गीली पट्टी :–

सूती पट्टी को ठण्डे पानी में भिगोने के बाद नाभी से दो अंगूल नीचे से पूरे पेडू तक लपेटते है। फिर उसके बाद ऊपर से ऊनी पट्टी लपेटते है।

लाभ:– कब्ज, दस्त, पेट के रोग आदि में लाभदायक होती है।

जोड़ की गीली पट्टी :–

शरीर के जिस जोड़ में दर्द या सूजन हो वहां पर सूती कपड़े को ठंडे पानी में भिगोकर निचोड़कर उसकी कई तह रख देते है और ऊपर से ऊनी कपड़े को लपेट देते है।

लाभ :– जोड़ों की सूजन, दर्द, गठिया आदि रोग में इसका उपयोग लाभदायक होता है।

अग्नि तत्व चिकित्सा की प्रमुख विधियाँ

अग्नि तत्व की प्रमुख विधियाँ :–

1) **सप्त किरण स्नान या धूप स्नान :–** सूर्य को सप्त रश्मि या सप्त किरण भी कहते है, सूर्य लाल, नारंगी, हरी, नीली एवं बैंगनी किरणों से युक्त है। इन सातों रंगों के एकत्र होने से ही श्वेत रंग की उत्पत्ति होती है। इन सातों किरणों में रोग को नष्ट करने वाली शक्ति विद्यमान रहती है।

सर्दी के मौसम में सामान्यतः सभी धूप में बिना कपड़ों के बैठकर धूप स्नान का आनन्द लेते है। परन्तु रोगी को उचित लाभ पहुँचाने के लिए विशेष रीति से धूप स्नान दिया जाता है। धूप स्नान में ली जाने वाली सावधानियाँ इस प्रकार से है –

1) धूप स्नान के समय सिर को छाया में रखना चाहिए।
2) धूप स्नान से पूर्व सिर, मुँह, गर्दन को अच्छी तरह से धोना जरूरी होता है।
3) बहुत तेज धूप में धूप स्नान नहीं लेना चाहिए। इसके लिए प्रातः काल एवं सायंकाल की हल्की किरणें ही उत्तम होती है।
4) धूप स्नान का समय रोज धीरे–धीरे बढ़ाना चाहिए। प्रारम्भ में ही देर तक धूप स्नान नहीं लेते है।

5) धूप स्नान लेने के कुल समय के चार भाग करके पीठ, पेट, दाहिनी करवट, बायीं करवट लेटकर धूप स्नान करते है।

6) महिलाओं को कम से कम कपड़े पहनकर या पतला कपड़ा लपेटकर स्नान करना चाहिए।

7) सूर्य स्नान नियमित रूप से बिना छोड़े रोज करना चाहिए।

साधारण धूप स्नान :–

इसके लिए शरीर से कपड़े उतारकर सीधी दरी के ऊपर लेट जाते है। सिर की छाया में गीले कपड़े से ढ़क देते है। धूप में लेटकर यदि अपने स्नान के अन्तराल में पसीना निकल आये तो उचित रहता है।

पसीना लाने के लिए धूप स्नान :–

स्नान के लिए धूप में बैठने से पूर्व गरम पानी पी लेने से 20 से 30 मिनट में ही शरीर से पसीना निकलने लगता है। यदि व्यक्ति को पसीना नहीं आता है तो ऐसी स्थिति में भी तीस मिनट से ज्यादा धूप स्नान नहीं करना चाहिए।

रिकली का धूप स्नान :– इस विधि में पूरे शरीर से कपड़े उतारकर धूप स्नान दिया जाता है। साथ ही सिर में भी कोई कपड़ा या छाया नहीं रखते है। यह स्नान सूर्य उदय के तुरन्त बाद लिया जाता है। पहले दिन रोगी को 5 मिनट के बाद, 3–3 मिनट के हिसाब से कुल 9 मिनट तक रखना चाहिए। दूसरे दिन 5 मिनट के बाद 6–6 मिनट, तीसरे दिन प्रति बार 9 मिनट इसी प्रकार समय को बढ़ाते है और दसवें दिन 3 बार आधे–आधे घण्टा करके प्रयोग करते है। तद्पश्चात पसीना आने पर पूरे शरीर को गीले तौलियें से अच्छी तरह से पौछ लेते है। फिर पुनः धूप लेनी चाहिए।

कूने का धूप स्नान :– इस विधि में शरीर से कपड़े उतारकर धूप में लेट जाना चाहिए ऊपर से केले या अन्य पत्तियों द्वारा पूरे शरीर को ढ़क लेते है। पत्तों के अभाव में गीले कपड़े द्वारा भी शरीर को ढ़का जा सकता है। इस प्रकार करने से शरीर गरम हो जाता है और शरीर से पदार्थ पसीने के साथ बाहर निकल जाते है।

भीगी चादर के माध्यम से धूप स्नान :– इस विधि में बिना कपड़ों के रोगी को धूप में लेटा दिया जाता है और उसके शरीर को एक सूखे कम्बल या चादर से गले तक ढ़क दिया जाता है। यह स्नान 20–40 मिनट तक लिया जाता है। स्नान के बाद अन्त में मेहन स्नान लेना आवश्यक होता है।

जीवनी शक्ति बढ़ाने हेतु धूप स्नान :– इस विधि में निर्बल रोगी को सुबह शाम धूप में रखकर स्नान कराया जाता है। धूप में शरीर गर्म होने के बाद छाया में बैठा देते है।

ठंडी पट्टी के साथ धूप स्नान :– इस विधि में रोगी को एक टब में आधा इंच मोटे कपड़े की गीली चादर जोकि पूरे टब में बिछाई जाती है उस पर बिना कपड़ों के बैठाया जाता है। फिर ऊपर से भी दूसरी भीगी चादर रोगी के शरीर में डाल दी जाती है। धूप द्वारा जब गीली चादर सूख जाती है तो उसे पानी

डालकर पुनः गीला किया जाता है।

सूर्य किरणों द्वारा चिकित्सा हेतु उनकी प्रयोग विधि :–

रंगीन शीशों के बीच से गुजारकर :– इस विधि में रोगी के शरीर से कपड़े हटाकर उसमें रंगीन काँच की प्लेट से होते हुए सूर्य के प्रकाश को शरीर पर डाला जाता है।

सूर्य किरणों का वायु के माध्यम से भक्षण :– इस विधि में जल बोतल की भाँति ही खाली रंगीन बोतल में डांट लगाकर उसे धूप में रखते है और फिर पानी के स्थान पर बोतल में भरी हवा को नासिका द्वारा रोगी के भीतर पहुँचाकर रोग का उपचार किया जाता है। इसके लिए बन्द बोतल को 12 बजे से 1 बजे तक केवल एक घंटे ही धूप में रखते है।

रंगीन किरण तप्त जल से भीगे कपड़े की पट्टी लगाकर :–

सामान्यतः कपड़े की पीली पट्टी के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले सामान्य जल के स्थान पर अर्जित जल का प्रयोग किया जाता है।

जुकाम का अग्नि तत्व द्वारा उपचार :– गुनगुने पानी में नमक डालकर गरारे करने से भी गले में होने वाली खरास कम होती है साथ ही खांसी में भी इससे लाभ मिलता है।

– सूर्य नमस्कार का अभ्यास भी जुकाम में लाभ पहुंचाता है। इससे शरीर में गर्मी उत्पन्न होती है साथ ही रक्त संचार में भी वृद्धि होती है।
– रोग की स्थिति में रोगी को गरम पानी का सेवन करना चाहिये।
– स्नान के लिये भी गरम पानी का उपयोग लाभकारी रहता है।
– शरीर में विजातीय पदार्थ को निकालने के लिये एंव जुकाम के प्रभाव को कम करने के लिए पूर्ण चादर की लपेट भी उपयोगी एंव कारगर उपाय होता है।

दमा :–

इसमें श्वास लेने में रोगी को तकलीफ का अनुभव होता है, दम घुटने जैसे अनुभव खांसी आदि की समस्या रोगी को बनी रहती है। यह बहुत ही कष्टकारी स्थिति होती है जिसमें कठिन परिस्थिति में यह रोगी के लिये जानलेवा भी सिद्ध हो सकती है।

लक्षण :–

दमा अथवा अस्थमा का दौरा आने के कुछ घंटो पूर्ण रोगी पर कुछ लक्षण उभरते है जैसे– चिडचिडा होना, त्वचा पर दाने होना, चेहरा एंव होठ सूज जाना, अचानक खांसी उठना।

जैसे–जैसे रोग बढता जाता है वैसे–2 रोगी का शरीर दुर्बल तथा पतला होता जाता है झुके कन्धें, पीठ में कूबडापन आदि लक्षण भी रोगी पर देखे जाते है।

कारण :–

ईर्ष्या, क्रोध, विद्वेष, घृणा, अस्थमा होने का कारण हो सकते है, अकेलापन, प्रेम पाने की चाह,

भावनात्मक, ठुकराये जाने का भय।

अस्थमा एक पीढी से दूसरी पीढी में पैतृक ढ़ंग से भी परिवार में होने की स्थिति होती है। यह अस्थमा होने का एक महत्वपूर्ण कारण है।

दमा का अग्नि तत्व द्वारा उपयार :–

– गर्म पानी के उपयोग द्वारा शरीर के भीतर बनने वाले म्यूकस या श्लेष्मा को साफ करने के लिए प्रयासरत रहना जरूरी होता है।

– नमकीन गुनगुने पानी द्वारा नेति क्रिया करने से लाभ मिलता है इससे गर्दन के ऊपर के क्षेत्र की सफाई होती है जिससे नासिका नली साफ हो जाती है।

– स्थानीय भाप स्नान विधि भी रोगी की छाती पर विशेष रूप से प्रभाव डालते हुये लाभ लिया जा सकता है साथ ही पूरे शरीर में भाप लेकर भी इन रोगों में लाभ मिलता है।

विभिन्न रंगो के पानी का उपयोग व लाभः–

1. **लाल रंग –**

लाल रंग की बोतल का पानी अत्यन्त उष्ण होता है। इस रंग के पानी को पीना वर्जित है, क्योंकि इस पानी के सेवन से उल्टी या खूनी दस्त भी हो सकते हैं। अतः इस रंग के पानी का उपयोग मालिश करने अथवा शरीर के बाहरी भाग में लगाने के लिए किया जाता है।

लाभ– लाल रंग का पानी सभी प्रकार के कफ रोगों एवं वात रोगों में लाभकारी है।

2. **नारंगी रंग–**

बुद्धि और साहस को विकसित करने में नारंगी रंग का पानी विशिष्ट रूप से लाभकारी है। यह मांसपेशियों को स्वस्थ रखने के साथ–साथ रक्त संचार की वृद्धि करता है। यह इच्छा शक्ति और मानसिक शक्ति में भी वृद्धि करता है।

लाभ– नारंगी रंग का पानी कफ रोग, बुखार, हृदय रोग, गठिया, लकवा, अजीर्ण, एनीमिया व स्तनों में दूध की वृद्धि करने में भी यह रंग अत्यन्त लाभकारी है।

3. **पीला रंग–**

यह रंग शारीरिक स्वास्थ्य के साथ–साथ मानसिक स्वास्थ्य के लिये भी अत्यन्त लाभकारी है। यह हल्का रेचक होने के कारण पाचन संस्थान के लिए उत्तम है। पेचिश के रोग में नहीं लेना चाहिए।

लाभ– पेट दर्द, कब्ज, मेद रोग, हृदय रोग, यकृत एवं फेफड़ों के रोगों में अत्यन्त लाभप्रद है।

4. **हरा रंग –**

इस रंग की प्रकृति समशीतोष्ण है। यह शारीरिक व मानसिक प्रसन्नता प्रदान

करता है। यह मांसपेशियों को मजबूती प्रदान करता है। हरा रंग रक्त शोधक होने के साथ–साथ तंत्रिका तंत्र को मजबूती प्रदान करता है।

लाभ– हरे रंग का पानी सिर दर्द, रक्तचाप, कैंसर, बवासीर, मधुमेह, खांसी, जुकाम सभी प्रकार के चर्म रोग, टाइफाइड, बुखार, फुन्सी, दाद इत्यादि में अत्यन्त लाभप्रद है।

5. आसमानी रंग –

इस रंग की प्रकृति शीतल है। यह पितज रोगों को दूर करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। यह आमाशयिक उत्तेजना एवं प्यास का भी शमन करता है। आसमानी रंग का पानी एन्टीसेप्टिक का काम करता है। इसके साथ ही यह अच्छा पोषक टॉनिक होता है।

लाभ– खांसी, दस्त, अस्थमा, सिरदर्द, मूत्र रोग, पथरी, चर्मरोग सभी ज्वर व रक्तप्रवाह को रोकने आदि में प्रयोग किया जाता है। कफजन्य रोगों में इसका प्रयोग नहीं किया जाता है।

6. नीला, गहरा नीला रंग –

इस रंग की प्रकृति भी शीतल है। यह शान्ति और जीवनी शक्ति प्रदान करता है।

लाभ– यह पित्तजन्य रोगों में विशिष्ट लाभदायक है। अमाशय, अण्डकोश वृद्धि, श्वेत प्रदर तथा योनि से संबधित रोगों में विशेष उपयोगी है।

7. बैंगनी रंग – इस रंग की प्रकृति भी नीले रंग के समान शीतल है।

लाभ– रक्त कणों की वृद्धि करने में, खून की कमी को दूर करने में, अनिद्रा में एवं क्षय रोग में विशेषउपयोगी है।

सूर्य किरण चिकित्सा की सीमायें

1. लाल रंग की बोतल के पानी को पीना नहीं चाहिये। रोग निवारण के लिए इसका प्रयोग शरीर के बाहरी भाग में करना चाहिये।
2. कफज रोगों में आसमानी रंग का प्रयोग नहीं करना चाहिये।
3. पीले रंग की बोतल के पानी का प्रयोग पेचिश रोग में नहीं करना चाहिये।
4. बोतलों को धूप में इस प्रकार रखना चाहिये, जिससे की एक बोतल की छाया दूसरे रंग की बोतल पर ना पड़े।
5. बोतलों को पानी से पूरा न भरकर कम से कम तीन अंगुल खाली रखना चाहिये।

उपवास के सिद्धान्त, प्रकार, महत्व

प्राकृतिक चिकित्सा में रोग निवारणार्थ प्रयोग की जाने वाली विभिन्न विधियों में उपवास एक बहुत ही सस्ता एवं सुलभ साधन है। उपवास आध्यात्मिक चिकित्सा का भी एक प्रभावशाली साधन है। इसमें किसी प्रकार की आयु सीमा नहीं होती है। हर वर्ग का व्यक्ति उपवास कर सकता है।

उपवास का अर्थ, शरीर की पाचन प्रणाली में कार्यरत समस्त अंगो को विश्राम देना होता है। पाचन तंत्र को केवल उपवास काल में ही विश्राम मिलता है। हमारी दैनिक दिनचर्या में निरन्तर खाते रहने की आदत के कारण हमारा पाचन तंत्र भी निरन्तर कार्य करता रहता है। आदिकाल से ही भारतवर्ष में उपवास करने की प्रक्रिया चलती आ रही है। धार्मिक ग्रन्थों में उपवास केवल शारीरिक ही नहीं बल्कि मानसिक पवित्रता का भी एक साधन माना गया है।

उपवास एक प्राकृतिक स्थिति है। यह शारीरिक प्रकृति की मांग होती है। उपवास का अर्थ केवल निराहार रहना नहीं है, बल्कि उपवास शब्द का आध्यात्मिक रूप से जो अर्थ निकलता है उसके अनुसार उपवास निकट रहने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में उपवास करने वाले की परमात्मा और प्रकृति के साथ निकटता होती है। अर्थात् जब मनुष्य कुछ नियमों का पालन करते हुए स्वयं को परमात्मा और प्रकृति की गोद में निश्चिन्त होकर छोड़ देता है तो उस स्थिति को उपवास कहते हैं।

रोगावस्था में उपवास अमृत की तरह कारगर सिद्ध होता है। जब हम रोग से ग्रसित होते हैं तो हमारी भूख स्वतः ही बन्द हो जाती है। रोगावस्था में कुछ खाना विष के समान कार्य करता है। क्योंकि रोग होने पर शरीर की सारी शक्ति रोग को दूर करने में लग जाती है।

उपवास हमें नई शक्ति प्रदान करने के साथ–2 शरीर में उपस्थित विजातीय पदार्थ जो रोग का कारण होते हैं, उन्हें दूर करने में भी सहायक होता जहै।

उपवास शरीर में इकट्ठी हुई गन्दगी और कचरे को साफ करता है परन्तु यदि उपवास को उचित समय पर नहीं रोका गया तो उपवास काल में आवश्यक अंगो से शरीर के पोषक तत्वों का उपयोग होते ही शरीर का नाश होना भी आरम्भ हो जाता है और इससे धीरे–धीरे व्यक्ति की मृत्यु भी हो जाती है।

उपवास का महत्व:–

उपवास शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वच्छता के लिए अपूर्व एवं एक ही उपाय है। उपवास यदि ठीक ढंग से न किया जााए तो इससे लाभ के स्थान पर हानि भी हो सकती

है।

हमारा शरीर रबर की तरह बनी लचीली नलियों का बना होता है, नलियां अधिक खाते रहने की आदत के कारण फैल जाती है, जिससे उनपर रक्त का अधिक एवं अस्वाभाविक दबाव पड़ने लगता है। जिसके कारण शरीर के स्वाभाविक कार्यों में बाधा पड़ने लगती है। उपवास काल में जब हम आहार लेना बन्द करते हैं तो नलियां जिन्हें हम आंत कहते हैं। अपनी स्वाभाविक अवस्था में आने लगती है। रक्त से त्याज्य पदार्थ निकलने लगता है। यह कार्य उपवास के प्रारम्भिक दिनों में होता रहता है। जिससे रोगी को अपना शरीर हल्का अनुभव होने लगता है। कुछ समय पश्चात् आतों में पुनः श्लेष्मा निकलकर रक्त में मिल जाता है, और जल्द ही यह श्लेष्मा मूत्र द्वारा बाहर निकल जाता है। फलतः व्यक्ति स्वस्थ अनुभव करता है।

मनुष्य में ऊर्जा शक्ति का मुख्य स्त्रोत केवल भोजन नहीं है अपितु इससे भी अति प्रभावशाली एवं सूक्ष्म स्त्रोत प्राण शक्ति है। जिस हमें ब्रह्मण्डी ऊर्जा के रूप में जानते हैं। जिसकी प्राप्ति का एकमात्र साधन ईश्वर है। स्पष्ट है कि उपवास द्वारा मनुष्य की शारीरिक क्षमता में किसी प्रकार की कमी नहीं आती बल्कि उपवास द्वारा वह उत्तम स्वास्थ्य को प्राप्त करने में सक्षम रहता है। मानव शरीर में उपवास एक प्रभावशाली उपचार साधन के रूप में कार्य करता है। यह रक्त और लसिका के असामान्य संगठन और शरीर में विजातीय पदार्थों को शरीर से बाहर निकालने में सहायता पहुचाँता है।

मानव शरीर में दो प्रक्रियाएं निरन्तर चलती रहती है। एक पाचन एवं दूसरी मल निष्कासन जब इन दोनों कार्यो में लगे यन्त्रों में अतिरिक्त कार्य का भार पड़ता है तो यह क्रियाएँ ठीक से नहीं हो पाती है। जिसके कारण उत्पन्न विजातीय पदार्थ हमारी आंतरिक जीवनशक्ति को कमजोर कर देता है। इससे शरीर में नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

शरीर में विजातीय पदार्थों का निष्कासन धीमा हो जाने के कारण वह शरीर में ही एकत्रित हो जाते हैं। जिससे आगे चलकर अनके रोग होने की संभावनाएं हो जाती है।

उपवास व्यक्ति की जीवनीशक्ति बढाने में सहायता प्रदान करता है। उपवास से पाचन तंत्र को आराम मिलता है और मल निष्कासन की प्रक्रिया तेजी से होने लगती है। जिसमें व्यक्ति स्वस्थ व उर्जावान महसूस करता है।

धर्मपालन की एक विधि के रूप में भी उपवास का व्यवहार किया जाता है। सात दिन में एक बार या 15 दिन या एक महीने में एक बार उपवास अवश्य करना चाहिए। नवरात्रों में नौ दिन व्रत का भी विधान है। एकादशी,द्वादशी, पूर्णिमा, अमावस्या के दिनों में भी व्रत का विधान बताया जाता है।

उपवास द्वारा रोग क्षीण हो जाने पर पुनः जठराग्नि प्रदीप्त होती है और शरीर में हल्कापन आ जाता है। जिसके फलस्वरूप आरोग्य, भूख, प्यास, अन्न में रूचि शरीर में तेज बल और ओज उत्पन्न होता है।

उपवास के प्रकार

1. **प्रातः काल किया जाने वाला उपवासः–**

यह सबसे सरल उपवास है इसमें केवल सुबह का नाश्ता त्यागा जाता है और भोजन एक दिन केवल दो समय ही करते हैं पहला दिन के समय और दूसरा रात्रि के समय।

2. **सांय काल किया जाने वाला उपवासः–**

इस उपवास में सांयकालीन अर्थात् रात्रि का भोजन त्याग दिया जाता है। इसे अर्दोपवास या एक समय का उपवास भी कहते हैं। इसमें व्यक्ति दिन में केवल एक बार भोजन करता है। वो भी दोपहर के समय और जो भोजन व्यक्ति को दिया जाता है।

3. **एक हारोपवास–**

एक आहार के द्वारा जब उपवास किया जाता है। तो उसे एकाहारोपवास कहते है। इसमें कोई भी एक खाद्य पदार्थ का सेवन किया जाता है। जैसे केवल रोटी का सेवन या सब्जी या कोई भी एक फल आदि।

4. **रसोपवासः–**

रस द्वारा किए जाने वाले उपवास को रसोपवास कहा जाता है। इसमें व्यक्ति केवल फलों के रस, सब्जियों के सूप को ही आहार के रूप में लेता है। इस उपवास में दूध वर्जित होता है।

5. **फलोपवास–**

उपवास काल में जब केवल एक फल का सेवन किया जाता है तो उसे फलोपवास कहते हैं।

6. **मठोपवास–**

उपवास काल में जब आहार के रूप में केवल मट्ठा प्रयोग किया जाता है तो उसे मठोपवास कहा जाता है। इस उपवास को मठाकल्प भी कहते हैं। जब पाचन शक्ति कमजोर हो तब यह उपवास बहुत ही कारगर है।

7. **साप्ताहिक उपवास–**

जब सप्ताह में एक दिन पूर्णोपवास किया जाता है तो उसे साप्ताहिक उपवास कहते हैं। साप्ताहिक उपवास से शरीर के रोग्रसित होने की सम्भावनाएं कम रहती है।

8. **दीर्घ उपवास :–**

इस उपवास में पूर्णोपवास को लम्बे समय तक किया जाता है। समयावधि पूर्व निध ीरित नहीं होती है। समान्यत 21 दिनों से लेकर 50–60 दिन भी उपचार में लग जाते हैं। दीर्घ उपवास व्यक्ति को वास्तविक भूख लगने पर ही तोड़ा जाता है।

पूर्णोपवास

जिसमें व्यक्ति अपनी इच्छा से शुद्ध ताजे जल के अतिरिक्त किसी प्रकार की खाद्य वस्तु ग्रहण नहीं करता उस उपवास को पूर्णोपवास कहते हैं। यह कठिन उपवास होता है। पूर्णोपवास को कितने दिन तक करते हैं।

कोई भी उपवास कितने दिनों तक करना चाहिए। यह उपवास करने वाले व्यक्ति की प्रकृति, आवश्यकता तथा उपवास के प्रकार पर निर्भर होता है। इसके लिये कठोर नियम नहीं बनाया जा सकता है। साधारणतः कोई भी 5 से 7 दिनों तक पूर्णोपवास कर सकता है। सामान्यतः चंचल, लालची एवं दुराचारी व्यक्ति को लम्बे उपवास करने में कठिनाई होती है।

पूर्णोपवास के लिये तैयारी :–

पूर्णोपवास की पूर्व तैयारी में यदि उपवास आरम्भ करने से पूर्व कुछ दिन सूर्यस्नान, कटिस्नान तथा कुछ व्यायाम और सादा आहार ले लिया जाये तो इससे उपवास में अधिक लाभ की सम्भावना बढ़ जाती है।

पूर्णोपवास काल में की जाने वाली सावधानियां

1. **जल पीना :–**

उपवास काल में किसी प्रकार को भोजन नहीं लेना चाहिये। लेकिन ये आवश्यक है कि व्यक्ति स्वच्छ ताजा जल अवश्य ग्रहण करता रहे। एक दिन में व्यक्ति द्वारा 8–10 लीटर तक जल पीना चाहिये। जब प्यास लगे तब व्यक्ति को अधिक जल पीना चाहिये। यदि इच्छा हो तो व्यक्ति को पानी में कागजों में कागजी नींबू मिला लेना चाहिए।

2. **एनिमा :–**

उपवास काल में एनिमा लेना आवश्यक है क्योंकि इससे भी शरीर शुद्ध होता है। उपवास करते समय व्यक्ति आहार को त्याग देता है या फिर आहार लेना कम कर देता है। जिससे आंतो का कार्य धीमा हो जाता है या फिर बन्द हो जाता है।

3. **स्नान :–**

उपवास काल में व्यक्ति को प्रतिदिन सामान्य जल से स्नान करना चाहिये। इसी के साथ यदि प्रति दूसरे दिन एक उदर या मेहन स्नान भी लिया जाये तो शरीर पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। लम्बे उपवास में पूर्णस्नान न लिया जा सके तो व्यक्ति को कम से कम रोज गरम पानी से भीगे और निचोड़े कपड़े से अपने समूचे शरीर को रगड़कर साफ करना चाहिए।

4. **व्यायाम :–** उपवास काल के समय ये जरूरी नहीं कि व्यक्ति को केवल लेटे रहना है। उपवास के समय यदि व्यक्ति थोड़ा बहुत परिश्रम, व्यायाम आदि करता रहे तो ये उसके लिये लाभदायक सिद्ध होता है।

5. **आराम :–** उपवास कर रहे व्यक्ति को उपवास काल में व्यायाम के साथ ही साथ आराम करना भी आवश्यक होता है। यदि उपवास करने वाला व्यक्ति गहरी निद्रा ले सके तो उत्तम रहता है।

6. **मानसिक स्थिति :–** उपवास काल में मानसिक स्थिति के शांत और स्थिर रहने की बड़ी जरूरत है और यह गुण ईश्वर की उपासना के द्वारा बहुत ही सहजता से प्राप्त हो जाती है। इसलिये उपवासी को उपवास काल में अपने चित्त की शान्ति के लिये ईश्वर की भक्ति में मन लगाना चाहिये।

7. **उपचार :–** उपवास काल में किसी प्रकार की औषधि का सेवन नहीं करना चाहिये। सामान्यतः उपवास काल में बहुत से उपद्रव आते है। जिनसे डरकर व्यक्ति उनके उपचार हेतु दवा ले लेता है। उपवास के दौरान और उपवास के बाद काफी दिनों तक शरीर की हालत बहुत ही नाजुक रहती है और इन परिस्थितियों में दवा का प्रयोग करने से शरीर में हानिकारक प्रभाव पड़ता है। ऐसे व्यक्ति को घबराना नहीं चाहिये व प्राकृतिक उपचार करने चाहिए।

पूर्णोपवास तोड़ने की विधि :– सामान्यतः उपवास लेने से ज्यादा उपवास तोड़ने में व्यक्ति को ज्यादा सावधानी बरतनी पड़ती है। उपवास तोड़ने के लिए अधिक सतर्क एवं आत्म संयम की आवश्यकता होती है। उपवास के दिन में व्यक्ति की पाचन शक्ति कमजोर हो जाती है। इसलिये उपवास समाप्ति के समय बहुत सतर्कता के साथ अत्यन्त हल्का भोजन, स्वल्प मात्रा में लिया जाना चाहिये। उसके बाद जैसे–2 पाचन शक्ति बढ़ती है वैसे–2 भोजन की मात्रा भी बढ़ानी चाहिये। इस तरह से उपवास तोड़कर व्यक्ति उपवास के खतरों से बचते हुए उपवास का पूर्ण लाभ प्राप्त करता है।

आकाश तत्व द्वारा चिकित्सा

मोटापा :– मोटापा का अर्थ होता है शरीर के भार में अत्याधिक वृद्धि हो जाना। यह दो प्रकार के लोगों में अधिक देखा जाता है। एक वह जो प्रतिस्पर्धी, क्रोधी और लोभी होते हैं और अधिक मात्रा में तेजी के साथ खाते हैं। दूसरा वह महिलायें इस रोग से ग्रसित हो जाती है। जो नीरसता के कारण लगातार खाती रहती है। मोटापे से शरीर के विभिन्न संस्थानों जैसे– हृदय, रक्त परिसंचरण, श्वसन एवं

उत्सर्जन पर अनावश्यक जोर पड़ता है। जिससे चपायचय संबन्धी अनेक प्रकार की गम्भीर बीमारियों की सम्भावना बढ़ जाती है। इसके परिणाम व्यक्ति में तेजस्विता में कमी, मानसिक सुस्ती तथा डिप्रेशन के रूप में परिलक्षित होते हैं।

उपचार:–

1. यदि व्यक्ति एक दृढ निश्चय के साथ उपवास का अभ्यास प्रारम्भ करे तो मोटापे को दूरकर व्यक्ति सामान्य अवस्था प्राप्त कर सकता है। ऐसे व्यक्तियों को प्रेरणा एवं इच्छा शक्ति की बहुत आवश्यकता होती है।
2. योग, निद्रा, व्यायाम, कर्म योग आदि अभ्यास लाभदायक होते हैं।
3. भोजन करते समय आधा पेट भोजन करना चाहिए और एक चौथाई तरल पदार्थ (पानी) से और एक चौथाई हवा के लिए खाली छोड़ देना उत्तम रहता है।
4. रसाहार:– सब्जी का सूप (टमाटर, गोभी, पालक, ककड़ी आदि) बाद में फलाहार सन्तरा, मौसमी, खरबूजा आदि।

पृथ्वी तत्व/मिट्टी के महत्व व विभिन्न रोगों में चिकित्सा

पृथ्वी तत्व के शरीर में सम अवस्था में बने रहने पर शरीर स्वस्थ रहता है वही शरीर में जब यह तत्व विषम अवस्था को प्राप्त होता है तब शरीर में भिन्न –2 प्रकार के विकार एंव रोग उत्पन्न होते है। इन विकारों को दूर करने के लिए पृथ्वी तत्व का भिन्न – भिन्न रूपों में शरीर पर प्रयोग किया जाता है जिसे पृथ्वी तत्व चिकित्सा के नाम से जाना जाता है।

पृथ्वी तत्व चिकित्सा की विधियां :– इसके अन्तर्गत शरीर के विभिन्न अंगों के लिये अलग–2 प्रकार की पट्टीयों का वर्णन आता है।

1) पेट की ठंडी, गीली मिट्टी :–

मिट्टी को ठंडे जल में घोलकर आटे के समान मुलायम कर लेना चाहिए। तत्पश्चात मिट्टी को पेट की चौड़ाई के समान कपड़े पर फैला लेना चाहिए। लकड़ी अथवा फाईवर के बने सांचे पर पट्टी तैयार कर पेट पर रखते है। यह पट्टी 20 से 40 मिनट रखी जाती है।

सावधानियाँ :– जो मिट्टी एक बार प्रयोग में लाई जा चुकी है, पुन उसका प्रयोग नही करना चाहिए।

– पेट में सूजन, इन्फैक्शन होने पर भी ठंडी पट्टी नहीं देनी चाहिए।

– पट्टी को पेट पर ज्यादा जोर से पटकना नहीं चाहिए।

– रोगी को धबराहट अथवा बैचेनी होने पर तुरन्त पट्टी हटा लेनी चाहिए।

– कफ से सम्बन्धित विकारों जैसे जुकाम, बुखार, खाँसी आदि रोगों की तीव्रावस्था में ठंडी पट्टी नहीं देनी चाहिए।

लाभ :–

– यकृत विकारों में ठंडी मिट्टी पट्टी विशेष लाभ प्रदान करती है।

– ठण्डी मिट्टी पट्टी पेट में जलन, गैस, अपच तथा भारीपन आदि रोगों को दूर करती है।

– कब्ज को समाप्त करती है तथा आंतों की शुष्कता को दूर करती है।

– पाचन आन्तरिक अंगो की गर्मी को समाप्त करती है।

2) **पेट की गरम मिट्टी पट्टी :–** पूर्व वर्णित विधिनुसार गर्म मिट्टी की पट्टी तैयार कर रोगी की सहन शक्ति के अनुसार उसके पेट पर रख दिया जाता है। ऊपर से गर्म कपड़े के साथ ढक दिया जाता है।

3) **कमर (रीढ़) की हडी मिट्टी पट्टी :–** मिट्टी को 2–4 इंच चौड़ा तथा 2–3 फिट लम्बा फाइबर या लकड़ी के सांचे में सूती कपड़े को बिछाकर उस पर मिट्टी को फैलाकर पट्टी तैयार की जाती है फिर उस पट्टी को जमीन पर बिछाकर उसके ऊपर रोगी को लेटा दिया जाता है।

4) **कमर (रीढ़) की गरम पट्टी :–** इस मिट्टी को पहले सामान्य जल में 12 घंटे भिगोकर रखते है। यहां मिट्टी पूर्व की तुलना में जल की मात्रा अधिक रखते है। जब यह मिट्टी जल से अच्छी तरह भीग जाती है फिर इस मिट्टी को एक बर्तन में आग के ऊपर रख दिया जाता है। आग पर गर्म होने पर जब इसमें बुलबुले उठने लगते हैं तब इसे आग से नीचे उतारकर 2 से 3 फिट लम्बे तथा 2 से 4 इंच चौड़ी फाइवर की है पर कपड़ा बिछाकर मिट्टी को फैला दिया जाता है। उसके बाद पट्टी बनाकर जमीन पर रखी जाती है तथा उस पट्टी पर रोगी को लिटा दिया जाता है।

5) **माथे की ठंडी गीली पट्टी :–** इसमें ठंडी गीली मिट्टी को फाइवर के एक सांचे में कपड़े के ऊपर फैला दिया जाता है तथा पट्टी के रूप में तैयार किया जाता है। फिर रोगी को शवासन में लिटाकर और रोगी की आंखे बन्द करा कर उस तैयार पट्टी को माथे पर रख दिया जाता है।

6) **आंखों की गीली मिट्टी–पट्टी :–** सूती कपड़े को आकारनुसार दो भागों में काटकर मिट्टी को उन कपड़ो पर रखते है फिर रोगी को लेटाकर उसकी आंखे बन्द कराकर पट्टी को आखों पर रख दिया जाता है।

7) **पंजो की ठंडी पट्टी :–** इसमें तैयार मिट्टी को एक कपड़े पर बिछा लेते है। रोगी को पेट के बल लेटाकर उसके पंजो (तलवो) पर मिट्टी की पट्टी को रख दिया जाता है।

8) **सम्पूर्ण शरीर मिट्टी लेप :–** मिट्टी को सम्पूर्ण शरीर पर लगा लिया जाता है या लेप कर लिया जाता है। शरीर पर लेप करने के पश्चात उसे सुखाने के लिए धूप में बैठा दिया जाता है। जब वह

लेप पूरी तरह से सूख जाए उसके बाद स्नान कर लिया जाता है।

पंच प्राण

प्राण पांच प्रकार के होते हैं। पांचों प्राण शरीर के भिन्न–2 भाग में रहकर भिन्न एवं विविध गति प्रदान करते है।

1. प्राण 2. अपान 3. उदान 4. समान 5. व्यान

प्राण वायु :– प्राण शरीर के ऊर्ध्व भाग में संचरण करता है। यह श्वसन क्रिया के दौरान विश्व प्राण ऊर्जा को श्वसन तंत्र में लाकर प्राण को सम्पूर्ण शरीर में वितरित करती है। प्राण का स्थान हृदय कहलाता है। सभी प्राणों में प्राण सर्वश्रेष्ठ है। यह जीवात्मा को धारण करता है। उसके द्वारा कई प्रकार के महत्वपूर्ण कार्यो जैसे बोलना, सांस लेना, भोजन का पाचन एवं गमन तथा हृदय के कार्यो का संचालन होता है।

अपान वायु :–अपान वायु गुदा, मेढ, जंघा और जानु प्रदेशों में संचरण करता है। इस वायु का स्थान गुदा माना गया है। अपान वायु मल–मूत्र आदि को नीचे की ओर ले जाने के कारण यह नाभि के आसपास संचरण करती है तथा अधोवृत्ति है। अपान वायु मल–मूत्र सम्बन्धित कार्यो, गुदा द्वार की वायु को बाहर निकालना, देह शक्ति आदि का कार्य संचरित करती है।

उदान वायु :–यह शरीर में कण्ठ से ऊपर के भागों में संचरित होता है तथा उस भाग के कार्यो को नियंत्रित करता है। सुनना, देखना, स्वाद, सूंघना, चेहरे की कांति, मस्तिष्क के कार्य, हाइपोथैलेमस, पिट्यूटरी, थायमस, त्वचा आदि से सम्बन्धित कार्यो को संचालन उदान वायु द्वारा होता है।

समान वायु :– इस वायु का क्षेत्र हृदय से नाभि तक का भाग है तथा हृदय से नाभि तक शरीर की होने वाली क्रियाओं का संचालन समान वायु करती है। अमाशय, अग्नाशय, यकृत, तिल्ली व छोटी आंतों के कार्यो का संचालन समान वायु द्वारा होता है।

व्यान वायु :– सम्पूर्ण शरीर में अतिरिक्त प्राण वायु जो शरीर की समस्त गतिविधियों का संचालन करती है। व्यान वायु कहलाती है। जैसे रक्त संचार, उपापचयी क्रियाऐं, मांस पेशियों का संचालन, अस्थियों, उपास्थियों एवं संधियों की गतियां, संयोजी उत्तक के कार्यो का नियमन व्यान वायु करती है।

उपरोक्त पांचों मुख्य प्राण है। इन पांचों के अतिरिक्त शरीर में पांच उपप्राण भी है। ये क्रमशः छींकना, पलक झपकना, जभाई लेना, खुजलाना एवं हिचकी लेना आदि क्रिया का संचालन करते हैं।

प्राण शक्ति, स्त्रोत, सीमा लाभ व सावधानियां

प्राण एक ऐसी ऊर्जा है जो सभी स्तरों पर ब्रह्मण्ड में व्याप्त है। यह शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, अध्यात्मिक और ब्रह्मण्ड ऊर्जा है। सभी कम्पन करने वाली ऊर्जायें प्राण होती है सभी भौतिक ऊर्जाये यथा, जाप, प्रकाश, गुरुत्व, चुबंकत्व और विद्युत प्राण है।

प्राण जीवन का नियम और चेतना है इसको आत्मा के समान माना जाता है प्राण ब्रह्मण्ड के सभी जीवों में जीवन की श्वास है। प्राण वायु श्वास क्रिया को नियंत्रित करता है।

शरीर के सभी कार्य पांच प्राणवायु द्वारा संपादित होते हैं। ये प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान कहे जाते हैं ये किसी एक सशक्त ब्रह्मंडीय शक्ति के विशेष पक्ष हैं और सभी जीवों में जीवात्मा से संबधिंत नियम है, ईश्वर एक है, किन्तु विद्वान लोग उसे विभिन्न नामों से सम्बोधित करते हैं यही स्थिति प्राण की है।

प्राण चिकित्सा की सीमाएँ:-

1. शिशुओं, छोटे बच्चों,बड़े बूढ़ों पर बहुत अधिक प्राण शक्ति का उपयोग नहीं करा जा सकता है:- शिशुाओं और छोटे बच्चों के चक्र, जो कि ऊर्जा का केन्द्र होते है बहुत छोटे होते है, और उनमें अधिक बल भी नहीं होता है। उनके चक्र छोटे होने के कारण जल्दी ही भर जाते हैं। अत: देर तक ऊर्जा देने से उनकी दशा और बिगड़ सकती है।

2. आँखों पर :- आँखों को कभी भी सीधे ऊर्जित नहीं कर सकते है। आँखें बहुत ही कोमल व नाजुक अंग है। आँखों को सिर के पीछे की ओर से (पिछला शिरोचक्र) ऊर्जित करना चाहिए। यह स्थान भौंह (आज्ञा चक्र) और कनपटी (टैम्पल माइनर चक्र) के बीच होता है। इस प्रकार ऊर्जित करने से यदि आँखें समुचित रूप से ऊर्जित हो जाती है तो अतिरिक्त प्राणशक्ति आँखें में इकट्ठा न होकर शरीर के दूसरे हिस्सों में चली जाती है।

3. हृदय पर:- हृदय शरीर का महत्वपूर्ण एवं कोमल अंग है। यह अंग पूरे शरीर में परिसंचारण ाक काम करता है। हृदय को लम्बे समय तक ऊर्जित नही कर सकते हैं। क्योंकि उससे प्राणशक्ति की घनेपन की संभावना बढ़ जाती है।

4. मेंगमीन या कटि चक्र पर:- शिशुओं, बच्चों,बूढ़े व्यक्तियों और गर्भवती स्त्रियों का कटिचक्र ऊर्जित करना वर्जित है।

5. प्लीहा चक्र पर:-उच्च रक्तचाप व कमजोर व्यक्तियों पर प्लीहा चक्र का ऊर्जन वर्जित है।

सावधानियां:-

1. उपचारक को तब उपचार नहीं करना चाहिए, जब वह स्वयं बीमार हो या उसे सामान्य कमजोरी हो।
2. उपचारक को उस समय उपचार कभी नहीं करना चाहिए जब वह बहुत गुस्से में हो या चिडचिड़ा हो।
3. उपचार व रोगी को रोधात्मक पहनावे नहीं पहनने चाहिए। सिल्क, रबर और चमड़े की वस्तुएँ प्राणशक्ति के लिए आंशिक रूप से कवच का काम करती है।

प्राण व प्राण शक्ति (ऊर्जा)

''प्राण'' शब्द का सामान्य अर्थ गति–संचालन तथा सूक्ष्म स्तर पर कम्पन का सूचक होता हैं प्रकृति में जितने भी पशु–पक्षी तथा अन्य प्राणी है। उनकी गतिविधियों को एकाग्र होकर देखें तो ज्ञात होगा कि उनमें कोई शक्ति विद्यमान है जो उनके चलने, उड़ने, बोलने के कार्य को संचालित करती हैं। संक्षेप में हम कह सकते है कि प्राण एक ऊर्जा है, बल है, एक शक्ति है जो प्रत्येक जीवधारियों में जीवन को गत्यात्मकता, लयात्मकता तथा निरन्तरता प्रदान करती है। तथा जीवन की सम्पूर्ण गतिविधियों को समुचित रूप से सक्रिय रखती है। मनुष्य में जब शक्ति क्षीण हो जाती है। तब उसकी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा भावनात्मक गतिविधियां भी धीमी गति से सम्पन्न होती है। जब प्राण शक्ति समाप्त हो जाती है तो प्रायः यही कहते है कि अमुक व्यक्ति के प्राण निकल गये और मृत शरीर ही रहता है।

हम कह सकते है कि प्राण की प्रमुखता तथा सार्वभौमिकता के कारण चेतना के प्रवृति मिश्रित रूप को प्राणी कहा जाता है तथा प्राण ही शरीर को धारण करता है जो मुंह अथवा नासा छिद्रो द्वारा अन्दर बाहर संचार करता हैं वही प्राण कहा जाता है।

प्राण ऊर्जा :– प्राण ऊर्जा जिसको एक विस्तृत ऊर्जा, विश्व ऊर्जा, ब्रह्माण्ड़ीय ऊर्जा कहते है। यह एक ऐसी ऊर्जा है जो सूक्ष्म है, ध्यान की अवस्था में ही इसे अनुभव किया जा सकता है। इसे जीवनी शक्ति भी कहा जाता है।

प्राण :– प्राण का अर्थ है निरन्तर गतिशील, प्रकाशमय संचलन जो कि प्राणियों में हृदय की केन्द्रीय धड़कन, स्पन्दन, धमनी व शिराओं रक्त का परिवहन, नाड़ियों में सवेदन, श्वास व प्रश्वास का निरन्तर क्रियान्वयन तथा शरीर विभिन्न जैविक, रासायनिक क्रियाओं के होने से परिणाम स्वरूप उत्पन्न विजातीय द्रव्य, मल आदि का निष्कासन आदि के रूप में क्रियाशील रहना।

जिस प्रकार ईश्वर की व्याख्या करना कठिन कार्य है। उसी प्रकार प्रकृति का अति सूक्ष्म तत्व होने के कारण 'प्राण' की व्याख्या करना भी कठिन कार्य है। अति सूक्ष्म होने के कारण ही प्राण ब्रह्माण्ड़ के कण कण में व्याप्त है। अतः शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, लैगिंक, आध्यात्मिक और ब्रह्माण्डी ऊर्जा के रूप में सर्वत्र स्वीकार्य है।

प्रतिरोधक क्षमता :– जो शक्ति रोगी शरीर में रोगाणुओं से लड़ती है, विरोध करती है, वह शक्ति प्रतिरोधक क्षमता कहलाती है जब प्रतिरोधक शक्ति प्रबल होती है, रोगाणुओं का भक्षण करती है। जब प्रतिरोधक क्षमता क्षीण होती है। तब रोगाणु श्वेत रक्त कोशिकाओं का भक्षण करते है। अतः मानव शरीर जीर्ण रोगों से ग्रस्त हो जाता है।

प्रतिरोधक क्षमता अथवा जीवनी शक्ति हमारे शरीर में विद्यमान उस चिकित्सक को कहते है। जो प्रारम्भिक चिकित्सा की लड़ाई अकेले ही लड़ता है। हमारे शरीर की यह प्रक्रिया पूर्णतया स्वचालित है। जो शरीर में विद्यमान खरबों कोशिकाओं को निर्देशित कर रोगों से लड़ने की और अग्रसर करती है। इसी कारण इस शारीरिक सुरक्षा प्रणाली का स्वस्थ रहना हमारे शरीर के प्रत्येक अंग के लिए अति आवश्यक है। यही कारण है कि प्राकृतिक चिकित्सा का आधार शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाना ही है। इस कारण इसे प्रतिरक्षा प्रणाली या स्वयं की हीलिंग पद्धति के नाम से भी जानते है। मानवीय शरीर को क्षति पहुंचाने वाले बाहरी तत्वों को खत्म करने के लिए सदैव चलने वाली इस प्रक्रिया को प्रतिरोधात्मक शक्ति कहते है।

जीवनी शक्ति, प्रतिरोधक क्षमता को प्रभावित करने वाले कारक :–

1) **शारीरिक श्रम :–** प्रतिदिन के काम–काज, भाग दौड़ आदि शारीरिक श्रम में जीवनी–शक्ति का व्यय होता है। किन्तु इसके पश्चात विश्राम करके थकावट को दूर करके पुनः पूर्व स्थिति में आ सकते है। सामर्थ्य से अधिक परिश्रम करना जीवनी शक्ति के व्यय का कारण बनता है।

2) **पाचन, पोषण व मल निष्कासन :–** भोजन को पचाने में, जीवनी शक्ति पर अधिक भार पड़ता है, हम जो भोजन करते है, उसको पचाने में, पाचन रस तैयार करने में, शारीरिक कोशों की टूट–फूट की पूर्ति करने में, शरीर को पोषण देने में जीवनी शक्ति का व्यय, शारीरिक श्रम से अधिक होती है। अतः भोजन के चयन में हमें ध्यान रखना चाहिए कि भोजन सुपाच्य हो, अधिक गरिष्ठ अथवा रासायनिक भोजन से बचना चाहिए।

3) **मानसिक इच्छायें, आसक्तियों एवं चिंताये :–** मन के स्तर पर चिंता का अधिक भार पड़ता है। इच्छाओं की अधिकता, इच्छापूर्ति का अभाव तथा स्वार्थ पता से चिंता का जन्म होता है। घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, कृष्ठा, निंदा, स्वार्थ ये मन के विकार होते है। इन विकारों से उत्पन्न होने से शरीर से नलिका, विहीन, ग्रंथियों

से निकलने वाले रस जहरीले हो जाते है। जो हमारे विचार प्रणाली से मस्तिष्क के नाड़ी संस्थान द्वारा होता है।

जिस मात्रा में इच्छा की निवृत्ति होती जायेगी। उसी मात्रा में सुख का आगमन होगा। ध्यान की साधना से अहंकार कम होता है। प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के उपाय प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए हमें दैनिक जीवन शैली को सुदृढ़ बनाना होगा जिसके लिए निम्न कुछ बिन्दुओं पर ध्यान देकर अपने को उसके अनुरूप ढ़ालने की आवश्यकता है।

जीवन शैली द्वारा :–

1) प्रातः काल सूर्योदय से पहले उठना।

2) नियमित व्यायाम व योगासन में दिमाग से वीटा ''एड़ौफिन'' तथ खून में पायरोजिन का रिसाव बढ़ जाता है। उससे WBC और आक्सीजन की मात्रा शरीर में बढ़ जाती है।

3) **आहार :–** प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में हमें आहार के द्वारा आँवला, नींबू, सन्तरा, टमाटर, ताजे फल व सब्जियां अंकुरित अनाज शुद्ध व ताजा भोजन ही ग्रहण करना चाहिए। इनमें हमें विटामिन सी, बी, बी–1, बी–6, बी–12 इत्यादि प्राप्त होते है। जिनसे शरीर में 'एन्टीबॉड़ीज' के निर्माण की प्रक्रिया बढ़ जाती है।

4) **अच्छी गहरी नींद :–** प्राकृतिक जीवन शैली हेतु गहरी नींद द्वारा नई ऊर्जा आरोग्य एवम् शक्ति प्राप्त होती है सोते समय दिमाग की संचार प्रणाली को ठीक रखने हेतु सभी भाव व न्यूटॉग इत्यादि सन्तुलित होकर हमें हमें अच्छी नींद लेने में सहायक होते है। नींद से हमारे शरीर की थकी हुई मासपेशियां शरीर के विभिन्न अंग तथा स्नायु कोशिकाये ऊर्जावान होती है, नींद हमारे शरीर के लिए संजीवनी का काम करती है।

5) **भरपूर जल सेवन :–** प्रतिदिन 10 से 15 गिलास पानी जिसमें सुबह खाली पेट शौच से पहले एक या दो गिलास पानी पीना शरीर के लिए लाभदायक है। इससे आमाशय की धुलाई हो जाती है। पाचन क्रिया सुधरती है। आंतों की गति नियमित व नियंत्रित हो जाने से पेट में कब्ज इत्यादि नहीं होती। पसीना आता है। पेशाब बढ़ता है तथा इन सबके बढ़ने से शरीर में एकत्र विजातीय पदार्थ बाहर निकलते रहते है और विजातीय पदार्थ यदि शरीर में नहीं होगें तो अवश्य ही शरीर में प्रतिरोधक क्षमता अच्छी होगी।

6) **वातावरण एवम् पर्यावरण :–** हम जहां पर रहते है, काम करते है अथवा प्रातः कालीन भ्रमण, व्यायाम इत्यादि जहां करते है वहां का वातावरण प्रदूषण, धूल, धुन्ध इत्यादि से मुक्त होना आवश्यक है। क्योंकि प्रदूषित वातावरण अथवा कार्बन डाईआक्साइड़ एवम् हाइड्रो कार्बन, ठार इत्यादि से जहरीले रसायन निकलकर हमारे रक्त में न घुल सके इसलिए स्वच्छ वातावरण आवश्यक हो जाता है।

7) **ध्यान एवम् प्रार्थना :–** आज की तनाव भरी जीवन शैली में प्राणायाम एवम् ध्यान की आवश्यकता बहुत अधिक है। ध्यान के प्रभाव से शरीर में त्वचा, मस्तिष्क तन तथा मन में उथल पुथल का सन्तुलन तथा

सांमजस्य स्थापित होता हैं इसके द्वारा अनिंद्रा उच्च रक्तचाप, LDL, WLDL तथा खराब कोलेस्ट्रोल की मात्रा कम हो जाती है।

अभ्यंग चिकित्सा

यह एक प्राचीनतम चिकित्सा पद्धति है, जिसके द्वारा शारीरिक व मानसिक कष्टों को दूर किया जा सकता है।

अभ्यंग अर्थात् मालिशः- यह शब्द अतिसामान्य और प्रचलित शब्द है कि यह चिकित्सा कष्ट निवारक है। यह शारीरिक अंगों को स्वभाविक स्वरूप देती है,ऊतकों में ऊर्जा लाती है तथा आन्तरिक अंगों को संरक्षण प्रदान करती है।

(1) मालिश करने से न केवल शारीरिक तत्वों का उपचार होता है, बल्कि सभी नस-नाड़ियाँ भी इससे प्रभावित होती है, जिससे वे ऊर्जित होती है।

(2) मालिश प्राकृतिक चिकित्सा कि वह विधि है जिससे शरीर की मांसपेशियों तथा संधियों पर दबाव डालकर, विजातिय तत्वों को बाहर निकाला जाता है।

अभ्यंग चिकित्सा के सिद्धांतः-

(1) अभ्यंग का व्यवहारिक पक्षः- जैसे मालिश कर्ता का व्यवहार कैसा है।

(2) अभ्यंग का वैज्ञानिक पक्षः- मालिश कर्ता शरीर विज्ञान के बारे में कितना जानता है।

(3) विश्वासः- चिकित्सक व रोगी दोनों को इस चिकित्सा पर पूर्णतः विश्वास होना चाहिए।

अभ्यंग चिकित्सा का शारीरिक प्रभावः-

1.रक्त परिसचरंण तंत्र पर प्रभावः- धमनियों में उतेजना आती है लालरक्त कणों की वृद्धि होती है। रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है, चयापचय की क्रिया तीव्र होती है।

2. स्नायु सस्थान पर प्रभावः- स्नायुओं में उत्तेजना बनती है, स्नायुविक विकार दूर होते हैं। शरीर में हल्कापन आता है।

3. मांसपेशियों पर प्रभाव :- मांसपेशियां मजबूत बनती हैं, मासपेशियों का तनाव कम होता है। दूषित पदार्थ दूर हो जाता है। मासपेशियां सुड़ौल व सुगठित बनती हैं उनकी गति व सक्रियता बढती है।

4. अस्थि संस्थान पर प्रभावः- अस्थियां मजबूत बनती हैं,अस्थियां का सामान्य रूप विकसित होता है।

5. पाचन तंत्र पर प्रभावः- कब्ज दूर होती है। जठराग्नि प्रदीप्त होती है। भूख अधिक लगती है, आंतों को बल मिलता है। मल निष्कासन की गति बढ़ती है, यकृत को बल मिलता है।

6. वृक्कों पर प्रभावः- मालिश करने से वृक्कों की कार्यशीलता बढ़ती है जिससे रक्त साफ होकर यूरिक ऐसिड शरीर से बाहर निकल जाता है।

7. त्वचा पर प्रभावः- त्वचा मुलायम बनती है रोम कूप, साफ होते हैं।त्वचा में रोगों को रोकनें की शक्ति बढ़ती है।

8. श्वसन तंत्र पर प्रभावः- फेफड़ों की ऑक्सीजन ग्रहणशक्ति बढ़ती है प्रश्वास क्रिया के साथ कार्बनडाइआक्साइड बाहर निकलती है। फेफड़े मजबूत होते हैं।

अभ्यंग चिकित्सा के गुणः-

1. चिकित्सक ऐसा हो जो रोगी को दिये गये समय पर स्वयं प्रतिबद्ध हो।
2. मालिश करने वाला पूर्ण शारीरिक शक्ति सम्पन्न होना चाहिये। क्योंकि कमजोर व्यक्ति दूसरों की मालिश नहीं कर सकता ।
3. मालिश कर्ता के हाथ ठंडे नहीं होने चाहिए, नाखून कटे हो। चूड़ी, घड़ी ,अंगूठी आदि उतार देने चाहिये।
4. मालिशकर्ता का मन व हृदय पवित्र होना चाहिए इसे व्यवसाय समझकर नहीं, सेवा भाव समझकर करना चाहिए।

अभ्यंग की विधियांः-

किसी भी कार्य की विधि,स्थान, समय व स्थिति के अनुसार अलग-अलग होती है। अलग-अलग देशों में मालिश करने की अलग विधि है।

तेल अभ्यंग की विधियांः-

1. गति मालिश 2. थपकी 3. मसलना 4. गूंथना 5. घर्षण 6. मरोड़ना 7. रोलिंग 8. खड़ी थपकी 9. अंगुलियों से ठोकना 10. कटोरी थपकी।

अभ्यंग के प्रकारः-

1. तेल मालिश 2. सूखी मालिश 3. पांव की मालिश 4. ठंड़ी मालिश 5. गर्म-ठंडी मालिश 6. पाउडर की मालिश 7. बिजली से मालिश।

मुख्यतः जो ज्यादा प्रयोग में लायी जाती है वह दो प्रकार की मालिश हैः-एक सूखी मालिश,दूसरी चिकनाई युक्त अर्थात् तेल मालिश।

सूखी मालिशः- बिना तेल लगाये जब हाथों से सूखा घर्षण किया जाता है तो वह सूखी मालिश

कहलाती है। इसे हल्के दर्द या आलस्य की स्थिति में किया जाता है। आलस्य दूर करने के लिए हाथ, पैर, माथे,सिर पर हथेलियों से घर्षण करना सूखी मालिश के अन्तर्गत ही आता है। इस प्रकार की सूखी घर्षण युक्त मालिश से रक्त संचार में तीव्रता आती है फलस्वरूप पीड़ा दूर हो जाती है।

तेल मालिशः- जब पूरे शरीर में तेल या अन्य लाभदायक चिकने पदार्थ मलकर घर्षण क्रिया की जाती है। उसे तेल मालिश कहते हैं।

व्यायाम से पूर्व शरीर में तेल लगाकर मालिश करने से शारीरिक अंगों से सूखापन समाप्त हो जाता है। चिकनाई बनी रहती है जिससे शरीर में लचीलापन बना रहता है। जिससे व्यायाम करने में सरलता होती है।

तेल मालिश करने से शरीर में सकुंचन होता है, जिससे कोशिकाएं मजबूत होती है उनमें शक्ति आ जाती है, कोशिकाओं के शक्तिशाली होने से शरीर की झुरियां दूर हो जाती है।

अभ्यंग चिकित्सा में प्रयुक्त तेलः-

(1) कमजोर रोगियों को जैतून का तेल।

(2) जोड़ों के दर्द, गठिया, सायटिका में लाल रंग की बोतल का तेल।

(3) सिर दर्द में, कद्दू रोगन,बादाम रोगन या हल्के नीलें रंग की बोतल का तेल।

(4) चर्म रोगों में हरे रंग की बोतल का तेल।

अभ्यंग चिकित्सा के नियमः-

(1) मालिशकर्ता का स्वभाव शांत होना चाहिऐ।

(2) मालिशकर्ता स्वार्थी नहीं होना चाहिये।

(3) मालिश करने का स्थान खुला व हवादार होना चाहिये।

(4) गर्म मालिश पैरों के तलवों से आरम्भ करके हृदय व सिर की ओर लाते है। इससे शिराओं की सक्रियता आती है।

(5) ठण्डी मालिश सिर से पैरों की ओर करनी चाहिए। इसका प्रभाव धमनियों पर पड़ता है।

(6) मालिश के बाद रोगी को सामर्थ्य अनुसार ठंडे या गर्मजल से उसे स्नान कराना चाहिऐ। अन्यथा रोगी की स्थिति देखकर, तौलिये को गीला करके शरीर को रगड़ना चाहिये।

अभ्यंग चिकित्सा की सावधानियांः-

1. मालिश हेतु स्थान ऊँचा होना चाहिये।

2. मेज, कुशन,कम्बल आदि साफ-स्वच्छ होने चाहिये।

3. मालिशकर्ता को मालिश के विभिन्न प्रकार ज्ञात होने चाहिये।

4. मालिश लेने वाले को मालिश के समय गहरा श्वसन करना चाहिए।

5. एक व्यक्ति की मालिश में प्रयोग किया गया चादर, दूसरे व्यक्ति के मालिश में प्रयोग न करें।

एनिमा

एनिमा पांचन तंत्र के अन्तिम भाग अर्थात् बड़ी आंत के शोधन की क्रिया है। जिसे अभ्यान्तर स्नान,जल बस्ति, आंत स्नान आंत शोधन क्रिया आदि नामों से जाना जाता है। एनिमा एक अत्यन्त प्राचीन एवं प्रचलित शोधन क्रिया है। जिसका वर्णन प्राकृतिक चिकित्सा एवं साथ-साथ आयुर्वेद के ग्रन्थों, हठयोग के ग्रन्थों एवं आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में भी प्राप्त होता है।

एनिमा का प्रयोग प्रायः सभी प्रकार के रोगों से ग्रस्त रोगियों को स्वस्थ बनाने हेतु किया जाता है। एनिमा लेने के लिए एनिमा चंत्र की आवश्यकता पड़ती है। एनिमा यंत्र में एक प्लास्टिक का पात्र होता है। जिसमें एक से दो लीटर एनिमा द्रव्य अथवा जल ग्रहण करने की क्षमता होती है। इस पात्र में नीचे की ओर पार्श्व में एक छिद्र होता है जिसमें एक पाईप लगा होता है। इस पाईप के अन्तिम सिरे पर एक नौजल लगा होता है। इसी स्थान पर एक वाल्व लगी होती है जो पाईप से निकलने वाले एनिमा द्रव्य की मात्रा को नियंत्रित करने का कार्य करती है। इस नौजल के साथ रबर के बने एनिमा कैथेटर को जोड़ा जाता है।एनिमा कैथेटर छह से आठ इंच लम्बाई का एक लचीली रबर का बना पाईप होता है जिसके द्वारा एनिमा द्रव्य बड़ी आंत में पहुंचाया जाता है।

योग के अनुसार एनीमा (वस्ति कर्म) :- हठयोग में योग साधना के रूप में वर्णित षट्कर्म में वस्ति कर्म को प्रमुखता से वर्णित किया गया है।

महर्षि घेरण्ड के अनुसारः-

जल वस्तिः शुष्कवस्तिर्वस्ता च द्विविधौ स्मृतौं।

जल वस्तिं जले कुर्याच्छुकवस्तिं सदा क्षितौ।। (घे0स0 1/46)

अर्थात् वस्ति कर्म दो प्रकार का होता हैः- जल वस्ति और स्थल वस्तिः

जल वस्ति का अभ्यास जल में किया जाता है। स्थल वस्ति का अभ्यास भूमि पर, सूखे स्थल पर किया जाता है।

आधुनिक चिकित्सा में एनिमाः- आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में भी विभिन्न रोगों एवं अवस्थाओं में एनिमा क्रिया का प्रयोग किया जाता है। एनीमा क्रिया का प्रयोग पाचन तंत्र से सम्बन्धित विभिन्न रोगों, रक्त विकारों,त्वचा रोगों ,स्त्री रोगों एवं तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित रोगों को ठीक करने में भी किया जाता है। पुरानी कब्ज, मन्दाग्नि,गठिया, सिर दर्द,मुख से दुर्गन्ध आना, मुख एवं जीभ पर छाले पड़ना पीलिया आदि रोगों के उपचार में आधुनिक चिकित्सक एनीमा प्रयोग की सलाह देते हैं।

एनीमा की विधिः-

1. बायीं अथवा दाहिनी करवट लेकर पार्श्व में लेटकर
2. पीठ के बल सीधे लेट कर।
3. घुटनों एवं हाथों के बल लेटकर।

एनिमा हेतु दिशा निर्देशः-

1. एनिमा में स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना चाहिए।
2. एनिमा कक्ष साफ ,स्वच्छ एवं हवादार होना चाहिए।
3. एनिमा पात्र का अच्छी प्रकार गर्म जल से धोकर साफ रखना चाहिए।
4. एक रोगी के एनिमा कैथेटर का प्रयोग दूसरे रोगी पर कदायी नही करना चाहिए।
5. गुदा एवं बड़ी आंत अनेकों सवेंदनशील महत्वपूर्ण नाड़ियों का स्थल है एवं अत्यधिक कोमल अंग है। अतः एनिमा द्रव्य के तापक्रम का विशेष ध्यान रखना चाहिए।
6. एनिमा सदैव खाली पेट ही लेना चाहिए।
7. एनिमा के तुरन्त बाद ही शौच न जाकर,अपितु एनिमा द्रव्य को कुछ समय के लिए आंतों में ही होकर चाहिए।
8. एनिमा में एनिमा द्रव्य के रूप में सदैव प्राकृतिक पदार्थों जैसे नींबू, गिलोय, नीम व आडू के पत्ते,मट्ठा एवं शहद आदि का ही प्रयोग करना चाहिए।
9. एनिमा देते समय एनिमा पाईप में स्थित वायु को बाहर निकालकर ही एनिमा देना चाहिए।
10. एनिमा को लम्बे समय तक एवं नियमित रूप से नहीं लेना चाहिए।
11. रोगावस्था जैसे आंतों में संक्रमण,घाव, अल्सर, बवासीर एवं अन्य सम्बन्धित रोगों की अवस्था में एनिमा को योग्य एवं कुशल चिकित्सक के मार्गदर्शन में ही लेना चाहिए।

एनिमा में प्रयुक्त होने वाले जल, तेल, औषधः-एनिमा क्रिया मे प्रमुख रूप से शुद्ध जल का प्रयोग किया जाता है। शोधक गुण से युक्त बनाने के उद्देश्य से जल में नींबू के रस को मिला

दिया जाता है। अलग–अलग पर अलग–अलग प्रभाव होता है।

तापक्रम के आधार पर एनिमाः-

(क) सामान्य तापक्रम अथवा ठण्डे जल का एनिमाः–सामान्य तापक्रम (शरीर के तापक्रम) अथवा ठण्ड़े जल के एनिमा को शक्तिदायक एनिमा भी कहा जाता है। इस प्रकार के एनिमा में 300 से 500 मि.ली जल को एनिमा द्रव्य के रूप में ग्रहण किया जाता है। इस प्रकार के एनिमा में जल को कुछ समय(आधे से एक घंटा) आंतों में रोकने के उपरान्त ही शौच के द्वारा पेट साफ किया जाता है। यह एनिमा आंतों के बल क्षमता एवं क्रियाशीलता को बढ़ाने वाला होता है।

(ख) गुनगुने अथवा गर्म जल का एनिमाः–एनिमा क्रिया में जब गुनगुने अथवा गर्म जल का प्रयोग किया जाता है तब उसकी शोधन क्षमता और अधिक बढ़ जाती है अर्थात् इस प्रकार के एनिमा से बड़ी आंत का शोधन और अच्छी प्रकार से होता है। इसीलिए इस प्रकार के एनिमा का प्रयोग जीर्ण कब्ज को दूर करने में विशेष रूप से किया जाता है।

(ग) गर्म एवं ठण्डे जल का एनिमाः– इस विधि में पहले गर्म जल से रोगी को एनिमा दिया जाता है जिससे रोगी की बड़ी आंत का शोधन अच्छी प्रकार से हो जाता हैं एवं आंत में उपस्थित पुराना जमा हुआ मल उखड़ जाता है। इस एनिमा के तुरन्त बाद रोगी को ठण्डे जल का एनिमा दिया जाता है। इसके प्रभाव से जहाँ मल का उर्त्सजन अच्छी प्रकार से होता है। वही आंतों को बल भी प्राप्त होता है।

एनिमा में प्रयुक्त विभिन्न औषध द्रव्यः-

(क) त्रिफला चूर्ण के जल का एनिमाः– 50 ग्राम त्रिफला चूर्ण को 250 मि.ली. जल में अच्छी प्रकार उबालते हैं इसके बाद इस द्रव्य को छानकर ठण्डा करते हुए इसे एनिमा के रूप में रोगी को दिया जाता है।

यह एनिमा आंतों के शोधन के साथ साथ वात, पित एवं कफ दोषों के असन्तुलन को दूर करता है।

(ख) पालक,पुनर्नवा, चौलाई एवं बथुआ के रस के जल का एनिमाः– यह एनिमा द्रव्य बडी़ आंत से रक्त में मिलकर रक्त को पोषक तत्व प्रदान करता है जिससे शरीर में रक्त निर्माण प्रक्रिया तीव्र होती है एवं रक्तकणों की संख्या में वृद्धि होती है।

(ग) अशोक की छाल एवं पत्तियों के रस के जल का एनिमाः– यह एनिमा विशेष रूप से महिलाओं के प्रजनन तंत्र से सम्बन्धित रोगों को शीघ्रता से दूर करता है।

(घ) नीम एवं आडू की पत्तियों के रस के जल का एनिमाः– यह एनिमा रक्त शुद्धि का विशिष्ट गुण रखता है। इस एनिमा के प्रयोग से आंतों में कृमि(कीड़े,पुराना कब्ज, मुख से दुर्गन्ध आना, सग्रंहणी, आंतों मे संक्रमण एवं त्वचा रोग(फुन्सीयां निकलना) में विशेष लाभ प्राप्त होता है।

(ङ) प्याज एवं लहसुन के रस के जल का एनिमाः– इस एनिमा के अन्तर्गत 100 ग्राम प्याज एवं 25 ग्राम लहसुन के रस को जल में मिलाकर एनिमा द्रव्य तैयार किया जाता है। यह एनिमा कृमिनाशक गुण से युक्त तैयार किया जाता है अर्थात् इस एनिमा का प्रयोग आंतों में कृमि (कीड़े) एवं पेट दर्द में लाभ प्रदान करना है।

(च) निर्गुण्डी के काठे के जल का एनिमाः–यह एनिमा गर्म प्रकृति का होता है। जिसके प्रभाव से रक्त संचार बढ़ता है एवं जोड़ों के दर्द में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। गठिया,आर्थराइरिस, जोड़ो के दर्द एवं दर्द में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। गठिया, ऑर्थराइरिस एवं सूजन तथा स्नायु तंत्र के विकार आदि वात विकारों में यह एनिमा लाभ प्रदान करती हैं।

(छ) मठठे का एनिमाः– यह एनिमा शीतल प्रकृति का होता है। जिसके प्रभाव से आंतों एवं पेट की गर्मी दूर होकर आंतों को शीतलता प्राप्त होती है। आंतें बलशाली,स्वस्थ एवं सक्रिय बनती हैं।

(ज) शहद का एनिमाः– इस एनिमा से आंतों को पोषण प्राप्त होता है और आंतो की शक्ति एवं क्षमता बढ़ती है आंतों की क्षीण उत्सर्जन क्षमता, कोष्ठबद्धता,भूख नहीं लगना एवं भोजन नहीं पचना,पेट में हर समय हल्का दर्द व भारीपन इस एनिमा से तुरन्त लाभ प्राप्त होता है।

एनिमा के सामान्य लाभः–

1. एनिमा में अनेक प्रकार की औषधियों के संयोग के कारण यह दोषों का शमन करती है।
2. एनिमा से मलों की संग्राही होती है अर्थात् मलों का निष्कासन आसानी से होने लगता है।
3. एनिमा प्रयोग से क्षीण शुक्र व्यक्तियों में शुक्र वृद्धि करती है अर्थात् इसके प्रयोग से प्रजनन तंत्र सम्बन्धित रोगों में लाभ प्राप्त होता है।
4. एनिमा कृश व्यक्तियों का बृह्ण करती है अर्थात् दुबले पतले व्यक्तियों को लाभ प्रदान करती है।
5. एनिमा प्रयोग से स्थूलों को कृशकाया प्राप्त होती है अर्थात् मोटापे रोग में एनिमा प्रयोग लाभकारी प्रभाव रखती है।

6. एनिमा प्रयोग करने से नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। एनिमा प्रयोग करने से नाड़ियों में स्थित मलों का शोधन होता है जिसके परिणाम स्वरूप शरीर की समस्त इन्द्रियाँ स्वस्थ एवं तीव्र बनती हैं।
7. एनिमा क्रिया आयुष्कर एवं आरोग्यकर है।

सावधानियाँ:-

1. एनिमा सदैव खाली पेट ही लेना चाहिए। भोजन करने के तुरन्त बाद कभी भी एनिमा नही लेना चाहिए।
2. एनिमा क्रिया में सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए।
3. कैथेटर के अगले सिरे पर किसी स्निग्ध पदार्थ का प्रयोग करना चाहिए।
4. तापमान का विशेष ध्यान रखें।
5. केमिकल्स को एनिमा द्रव्य के रूप में प्रयोग नहीं करना चाहिए।
6. एनिमा का लम्बे समय तक प्रयोग नहीं करना चाहिए।
7. रोगावस्था में एनिमा सदैव चिकित्सा की देख रेख में लेना चाहिए।

धन्यवाद।